

Visit

**Dwarkadheeshvastu.com**

For

**FREE**

Vastu Consultancy, Music, Epics, Devotional Videos  
Educational Books, Educational Videos, Wallpapers

\*\*\*\*

All Music is also available in **CD** format. **CD Cover** can also be print with your Firm Name

\*\*\*\*

We also provide this whole Music and Data in **PENDRIVE** and **EXTERNAL HARD DISK**.

Contact : Ankit Mishra ( +91-8010381364, dwarkadheeshvastu@gmail.com )

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीगाणेश पुराण

## श्रीगणेश-पुराण

### अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
<b>प्रथम खण्ड</b>			
<b>१. प्रथम अध्याय</b>			
श्रीगणेशजी की कथा का प्रारम्भ प्रथमपूजा के अधिकारी श्रीगणेशजी विश्व की परिक्रमा करने की प्रतियोगिता	१३ १४ १५	त्रिपुरासुर से गणेश-प्रतिमा की याचना वर्णन ५३ ६. षष्ठ अध्याय	५३ ५४ ५७ ५९
<b>२. द्वितीय अध्याय</b>			
हरि अनन्त हरि चरित अनन्ता राजा सोमकान्त का वृत्तान्त-कथन राजा सोमकान्त के पूर्व जन्म का वृत्तान्त भृगु द्वारा वर्णन अमोघ प्रभाव गणेश-उपासना का कथन	१७ १८ १९ २१ २३	शिवजी द्वारा गणेशबर की उपासना का वर्णन ५४ शिवजी के समक्ष विनायक का प्राकट्य ५७ शिव द्वारा त्रिपुरासुर का विनाश	५४ ५७ ५९
<b>३. तृतीय अध्याय</b>			
राजा द्वारा गणेश पुराण श्रवण का संकल्प कथन वेदव्यास की बुद्धि का भ्रमित कैसे ? गणेश का त्रिदेवों को कार्य सौंपने का वर्णन ब्रह्माजी ने की, गजानन की उपासना विश्वेश्वर की उपासना भगवान् विष्णु द्वारा गणेशजी के वरदान से मधु-कैट्टभ का वध	२६ २७ २९ ३१ ३३ ३५	पार्वती ने गणेश-पूजन किया ६० राजा कर्दम का दृष्टान्त-कथन ६१ राजा नल का दृष्टान्त कथन ६२ राजा चित्रांगद का दृष्टान्त-कथन ६३	६० ६१ ६२ ६३
<b>४. चतुर्थ अध्याय</b>			
राजा भीम का उपाख्यान कथन श्रीबल्लाल विनायक की स्थापना का वर्णन काल की गति विचित्र होती है रुक्मिण्द की संकट से निवृत्ति	३६ ४० ४२ ४४	देवराज इन्द्र के विमान का पतन वर्णन ६५ गणेशबर के संकष्टी-ब्रत का इतिहास वर्णन ६७	६५ ६७
<b>५. पञ्चम अध्याय</b>			
मुकुन्दा की दुष्टता के कारण गृत्समद का शाप गृत्समद को अपनी माता का शाप त्रिपुरासुर ने गणेश की आराधना की देवताओं द्वारा श्रीगणेश-पूजा का वर्णन	४६ ४७ ४९ ५१	शिव-पार्वती-संवाद वर्णन ७१ शिवजी द्वारा सुदामा के वैभव-सम्पन्न होने का विवरण ७९ व्यापारी के धन चोरी होने का वर्णन ७४ चोरों से वैश्य को धन की पुनः प्राप्ति कथन ७६ भगवान् विनायक की कृपा चित्रबाहु पर ७८	७१ १७९ ७४ ७६ ७८
<b>६. षष्ठ अध्याय</b>			
पति-परित्यक्ता रानी सुनीता का आख्यान ७९ रानी सुनीता को सर्वसुख प्राप्ति का वृत्तान्त ८०			
<b>७. सप्तम अध्याय</b>			
देवताओं को वरदराज का दर्शन ८२ श्रीराधाजी ने गणपति की पूजा की ८४			
<b>८. अष्टम अध्याय</b>			
१०. दशम अध्याय			
पति-परित्यक्ता रानी सुनीता का आख्यान ७९ रानी सुनीता को सर्वसुख प्राप्ति का वृत्तान्त ८०			
<b>११. एकादश अध्याय</b>			
देवताओं को वरदराज का दर्शन ८२ श्रीराधाजी ने गणपति की पूजा की ८४			
<b>१२. द्वादश अध्याय</b>			
श्रीगणेशजी द्वारा चन्द्रमा को शाप वर्णन ८८ चन्द्रमा के ऊपर गणेशबर की कृपा ९०			

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
<b>द्वितीय खण्ड</b>			
१. प्रथम अध्याय		३. तृतीय अध्याय	
गणपति का चरित्रकथन कल्पभेद से गणेशबर गणपति की प्राकट्य-कथा	९४ ९५	पार्वती का आत्मघात के लिए तैयार होना १३७ श्रीकृष्ण ध्यान में पार्वती का मर्म होना १३९	
२. द्वितीय अध्याय		४. चतुर्थ अध्याय	
गणपति का शिवगण से युद्ध वर्णन परास्त होकर शिवगणों का भागना	९६ १०१	विप्रवेशधारण कर ग्रभु का आना १४१ विप्र का अन्तर्धान होना शिशुरूप में प्राकट्य १४४	
३. तृतीय अध्याय		पुत्रोत्सव तथा जातकर्म वर्णन १४७	
शिवा द्वारा महाशक्तियों का प्राकट्य वर्णन शिवजी का युद्ध के लिए गणेश की ओर जाना	१०३ १०५	५. पञ्चम अध्याय	
गणेशबर का मस्तक छेदन वर्णन	१०७	गणपति के दर्शनार्थ शनिश्चर का कैलास जाना १५०	
४. चतुर्थ अध्याय		विशालाक्ष का शनिश्चर को रोकना १५३	
पार्वती का क्रोध, महाशक्तियों का प्राकट्य	१०८	पार्वती की आज्ञा से शनि का अन्तःपुर में प्रवेश वर्णन १५५	
रुद्राणी के तेज से रुद्र का दुखित होना नारदजी द्वारा शिवा का स्तवन करना	११० ११२	६. षष्ठ अध्याय	
५. पञ्चम अध्याय		शनि को पत्ती द्वारा शाप प्राप्ति १५८	
गजानन का पुनर्जीवन-दान वर्णन	११४	पार्वती ने शनि को पुत्र दर्शन की आज्ञा दीं १६०	
गजानन का अभिषेक तथा वर प्रदान करना	११५	शनि की दृष्टि पड़ते ही शिशु का मस्तक छिन हो गया ! १६१	
आनन्दोत्सव का समारोह	११८	श्रीहरि द्वारा गजराज का मस्तक काटना १६२	
<b>तृतीय खण्ड</b>			
१. प्रथम अध्याय		गजराज को पुनः जीवन-दान देना १६४	
शौनक ने पुण्यव्रत-विषयक प्रश्न पूछा पुण्यक-व्रत का विधान	१२०	७. सप्तम अध्याय	
पुण्यक-व्रत की फल-श्रुति	१२२	शिशु के धड़ पर हाथी का मस्तक जोड़ना १६६	
२. द्वितीय अध्याय		श्रीहरि द्वारा पार्वती को समझाना वर्णन १६८	
गिरिजा द्वारा पुण्यक-व्रत का अनुष्ठान करना	१२७	८. अष्टम अध्याय	
व्रत की समाप्ति, पुरोहित का दक्षिणा याचना	१३१	आभूषणस्वरूप शिशु को शक्ति प्रदान करना १७०	
समस्या का समाधान त्रिलोकीनाथ ने किया	१३४	शनिदेव को पार्वती का शाप १७१	
पार्वती के अनुपम धैर्य की जाँच	१३६	सूर्यदेव, कश्यप तथा यमराज का पार्वती पर क्रोधित होना १७१	

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
<b>१. नवम अध्याय</b>		<b>५. पञ्चम अध्याय</b>	
शिव द्वारा सूर्यदेव का वध	१७६	कार्त्तवीर्य-परशुराम-युद्ध	२०९
कश्यप द्वारा शिवजी को शाप देना	१७८	परशुराम का शूल से मूच्छित होना	२११
सूर्यदेव को पुनर्जीवन की प्राप्ति	१७९	परशुराम का पृथ्वी को २१ बार	
शिशु के धड़ में गजमुख जोड़ने के प्रति संदेह	१७९	क्षत्रिय-विहीन करना	२१३
<b>१०. दशम अध्याय</b>		<b>६. षष्ठ अध्याय</b>	
पादमकल्प में घटित घटना का वर्णन	१८२	परशुराम का कैलास पर जाना तथा	
दुर्वासा का इन्द्र को पारिजात पुष्ट देना	१८३	गणेश्वर का भीतर जाने से रोकना	२१४
पारिजात पुष्ट को हाथी के मस्तक		परशुराम का गणेश्वर से युद्ध	२१६
पर रखना	१८४	गणेश्वर का पराक्रम	२१७
<b>११. एकादश अध्याय</b>		<b>७. सप्तम अध्याय</b>	
राज्य श्री से इन्द्र का वंचित होना	१८५	गणेश्वर के 'एकदन्त' होने का वर्णन	२१९
ब्रह्माजी द्वारा इन्द्र को नारायण-स्तोत्र कथन	१८७	उमा का परशुराम पर कोध करना	२२१
<b>चतुर्थ खण्ड</b>		वामन भगवान् का प्रकट होना वर्णन	२२२
<b>१. प्रथम अध्याय</b>		<b>८. अष्टम अध्याय</b>	
गणेशजी 'एकदन्त' कैसे हो गये ?	१८९	गणेश्वर के वेद-प्रसिद्ध अष्ट नाम	२२३
जमदग्नि द्वारा कार्त्तवीर्य को निमन्त्रण देना	१९०	परशुराम का श्री उमा को प्रसन्न करना	२२६
कार्त्तवीर्य का जमदग्नि से कामधेनु		<b>९. नवम अध्याय</b>	
की माँग करना	१९३	तुलसी का गणपति को शाप	२२७
मुनि द्वारा गौ देने को अस्वीकार करना	१९४	गणपति का तुलसी को शाप वर्णन	२३०
<b>२. द्वितीय अध्याय</b>		<b>पञ्चम खण्ड</b>	
राजा द्वारा बलपूर्वक कपिला गाय लाने		<b>१. प्रथम अध्याय</b>	
का सेना को आदेश	१९५	देवान्तक-नरान्तक के जन्म-वृत्तान्त	२३२
कामधेनु द्वारा करोड़ों सैनिक उत्पन्न करना	१९७	देवान्तक और नरान्तक को वर प्रदान करना	२३४
कार्त्तवीर्य-जमदग्नि-संग्राम	१९८	<b>२. द्वितीय अध्याय</b>	
राजा द्वारा शक्ति प्रहार से जमदग्नि की मृत्यु	१९९	देवान्तक-नरान्तक द्वारा त्रैलोक्य	
परशुराम का आश्रम में आगमन	२०१	विजय-प्रस्थान	२३७
<b>३. तृतीय अध्याय</b>		देवान्तक का स्वर्ग पर आधिपत्य	२३७
परशुराम का प्रण : पृथ्वी को क्षत्रियविहीन		नरान्तक की विजय मर्त्यलोक और	
करने का	२०२	पाताल पर	२३८
परशुराम का शिवजी की आराधना वर्णन	२०४	नरान्तक द्वारा नागलोक की पराजय वर्णन	२३९
<b>४. चतुर्थ अध्याय</b>		अदिति द्वारा घोर तपश्चर्या का प्रारम्भ	२४०
परशुराम द्वारा राजसभा में दूत का भेजना	२०६	माता अदिति को विनायक के दर्शन	२४२
कार्त्तवीर्य और उसकी रानी का संवाद कथन	२०७	देवमाता अदिति को वर-प्राप्ति वर्णन	२४३

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
३. तृतीय अध्याय		१. नवम अध्याय	
पृथ्वी की व्यग्रता एवं देव-समूहों द्वारा आदिदेव का स्तब्न करना	२४४	विनायक का अभिनन्दन-पूजन	२८८
महोत्कट का प्रकट होना	२४६	काशी नगरी पर नरान्तक का आक्रमण	२९०
महोत्कट का जातकर्म संस्कार	२४८	काशीनरेश को चिन्ता	२९२
४. चतुर्थ अध्याय		दैत्यसेना की विजय	२९३
भगवान् महोत्कट की बाल-लीलाएँ	२५०	नरान्तक का संहार	२९७
चित्र नामक गन्धर्व को अपने स्वरूप की प्राप्ति	२५२	पिता रुद्रदेव का शोकित होना	३००
महोत्कट के मुख में विश्वरूप दर्शन कथन	२५३	१०. दशम अध्याय	
महोत्कट के विविध रूपों के दर्शन	२५५	देवान्तक का काशी पर आक्रमण	३०१
५. पञ्चम अध्याय		शक्तियों की विशाल सेना और पराक्रम	३०२
महोत्कट का उपनयन-संस्कार वर्णन	२५६	असुरों की हार	३०३
देवताओं द्वारा अनेक प्रकार की वस्तुएँ प्रदान करना	२५८	११. एकादश अध्याय	
इन्द्र का अहंकार-भंजन	२५९	देवान्तक द्वारा अघोर मन्त्र का अनुष्ठान वर्णन	३०५
विद्या का अध्ययन तथा शूरता	२६१	देवान्तक को विराट रूप के दर्शन	३०८
६. षष्ठ अध्याय		युवराज-विवाह तथा विनायक का जाना	३०९
महोत्कट की काशी जाना	२६२	दुष्णिंद्राज गणेश की स्थापना	३११
धूम्राक्ष-वध महोत्कट द्वारा	२६४	षष्ठ खण्ड	
जघन और मनु नाम के दैत्यों का संहार	२६५	१. प्रथम अध्याय	
नरान्तक का अत्यन्त क्रोधित होना	२६७	उग्रेक्षण सिन्धु का जन्म	३१३
विष्णुटादि दैत्यों की मृत्यु	२६८	उग्रेक्षण का प्रबल पराक्रम तथा वर की प्राप्ति	३१५
राजभवन में महोत्कट का पूजन और स्वागत	२७०	उग्रेक्षण के राज्य का विस्तार होना	३१६
७. सप्तम अध्याय		२. द्वितीय अध्याय	
धूम्राक्ष-पत्नी जुम्भा का वध	२७१	देवताओं द्वारा संकष्टीचतुर्थी-ब्रत करना	३१८
अनेक महाबली असुरों का संहार वर्णन	२७३	कैलास से शिवजी का पलायन	३२०
ज्योतिषी रूप वाला मायावी असुर का संहार	२७५	पार्वती को पुत्र की प्राप्ति, मयूरेश्वर का जन्म	३२१
असुर कूपक और कन्दर की मृत्यु	२७९	उग्रेक्षण का चिन्तित होना	३२२
८. अष्टम अध्याय		३. तृतीय अध्याय	
तीन असुरों का काशी पर आक्रमण	२८०	गृध्रासुर का मारा जाना	३२४
मायामय पक्षी का प्राकट्य	२८२	क्षेमासुर एवं कुशलासुर का मारा जाना	३२४
दैत्य-माता द्वारा बदले की कारंबाई	२८४	कूर नामक असुर की मृत्यु	३२५
दैत्य की माता भ्रामरी की मृत्यु	२८६	व्योमासुर-वध	३२६
		राक्षसी शतमहिषा का वध	३२७
		और भी अनेक राक्षसों का वध	३२८

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
तरह-तरह की बाल-क्रीड़ाएँ	३२८	२. द्वितीय अध्याय	
४. चतुर्थ अध्याय		मयूरेश्वर का प्रकट होना	३७५
बृकासुर का वध	३३१	सिन्दूरासुर द्वारा दिग्विजय	३७७
उपनयन-संस्कार मयूरेश्वर का	३३२	देवताओं द्वारा विनायक की स्तुति करना	३७९
राक्षस नूतन वध	३३३	३. तृतीय अध्याय	
अण्डा से निकले पक्षी के वध का वर्णन	३३३	भगवान् गजानन का प्रकट होना	३८१
अश्वासुर का वध	३३५	अपने पुत्र से पार्वती का भयभीत होना	३८४
५. पञ्चम अध्याय		राजा वरेण्य के यहाँ गजानन को	
नागलोक पर विजय	३३५	नन्दी द्वारा पहुँचाना	३८६
त्रिसन्ध्याक्षेत्र से शिवजी का प्रस्थान	३३८	सिन्दूरासुर के अत्याचारों की बृद्धि	३८७
कमलासुर का वध	३३९	४. चतुर्थ अध्याय	
मंगल दैत्य का वध	३४१	महर्षि पराशर की प्रभु-भक्ति	३८८
६. षष्ठ अध्याय		सिन्दूरासुर को आकाशवाणी द्वारा चेतावनी	३९१
नन्दी का पराभव	३४१	क्रौंचगन्धर्व को मूषक होने का शाप	३९४
इन्द्र का गर्व स्फुरण	३४४	गणेश का प्रिय वाहन मूषक	३९६
गजराज की बागान की तैयारी	३४४	७. सप्तम अध्याय	
गणपति की प्रतिज्ञा	३४७	मूषक गणेश का वाहन	३९८
७. सप्तम अध्याय		गजानन का युद्ध के लिए प्रस्थान करना	३९९
दैत्येश्वर उग्रेक्षण के साथ मयूरेश्वर का		सिन्दूरासुर भगवान् का गजानन के साथ युद्ध	४०२
युद्ध आरम्भ	३५१	युद्ध में सिन्दूरासुर का मारा जाना	४०४
उग्रेक्षण की पुनः पराजय	३५४	८. षष्ठ अध्याय	
कल-विकल असुरों का संहार	३५८	राजा वरेण्य का पश्चात्ताप वर्णन	४०७
दैत्येश्वर उग्रेक्षण का वध	३६०	कलियुग में धूम्रकेतु अवतार का वर्णन	४०९
८. अष्टम अध्याय		अष्टम खण्ड	
मयूरेश का सिद्धि-बुद्धि के साथ पाणिग्रहण	३६३	१. प्रथम अध्याय	
इन्द्र का मान भंग	३६४	गणपति के आठ अवतार	४१२
लीला का संवरण	३६६	वक्रतुण्डावतार (१)	४१३
सप्तम खण्ड		मत्सरासुर ने त्रैलोक्य विजय की	४१५
१. प्रथम अध्याय		देवताओं को 'ग' मन्त्र-जप का उपदेश	४१९
सिन्दूरासुर की उत्पत्ति	३६९	मत्सरासुर का गणेशजी की शरण में जाना	४२२
सिन्दूर का वर की परीक्षा का प्रयत्न करना	३७१	असुर दम्प की उत्पत्ति	४२३
चतुरानन का भागकर बैकुण्ठ जाना	३७२	२. द्वितीय अध्याय	
विष्णु का सिन्दूर दैत्य को कैलास भेजना	३७३	एकदन्त अवतार (२)	४२७
सिन्दूरासुर द्वारा पार्वती को हरण करने की चेष्टा	३७३	मदासुर द्वारा दिग्विजय करना	४२९
		मदासुर का गर्व-भंजन	४३५

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
<b>१. तृतीय अध्याय</b>			
महोदरावतार का वर्णन (३)	४३७	सरल-विधि गणपति आराधना की	४८२
पार्वतीजी की लीला	४३८	<b>२. द्वितीय अध्याय</b>	
मोहासुर द्वारा ब्रह्माण्ड विजय-वर्णन	४४२	नारदजी की शंका का समाधान कथन	४८५
मोहासुर की शरणागति	४४३	गणेशजी के बारहों महीने के व्रत-विधान	४८७
दुर्बुद्धि तथा ज्ञानारि दैत्यद्वय का		चन्द्र-दर्शन का निषेध वर्णन	४९०
विनाश वर्णन	४४४	गणेश-व्रत सम्बन्धी फलश्रुति कथन	४९२
<b>३. चतुर्थ अध्याय</b>			
गजाननवतार (४)	४४७	<b>श्रीगणेशस्तोत्राणि</b>	
लोभासुर द्वारा राज्य-विस्तार वर्णन	४४८	१. गणेशन्यासः	४९५
गजपुख का देवताओं को आश्वासन	४५०	२. सङ्कष्टहरणं गणेशाष्टकम् (१)	४९५
<b>४. पञ्चम अध्याय</b>			
लम्बोदरावतार की कथा (५)	४५१	३. गणेशाष्टकम् (२)	४९७
क्रोधासुर की उत्पत्ति वर्णन	४५२	४. गणेशाष्टकम् (३)	४९८
क्रोधासुर का विजय-अभियान आरम्भ	४५४	५. गणेशाष्टकम् (४)	४९९
मायाकर का उत्कर्ष एवं संहार वर्णन	४५८	६. गणेशकवचम्	५००
<b>६. षष्ठ अध्याय</b>			
विकटावतार का वर्णन (६)	४५९	७. सङ्कष्टनाशनं गणेशस्तोत्रम्	५०३
कामासुर को वर प्राप्त करना	४६०	८. श्रीगणेशमहिमःस्तोत्रम्	५०४
कामासुर का आत्मसमर्पण	४६२	९. गणेशाऽष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्	५०७
<b>७. सप्तम अध्याय</b>			
विज्ञराज अवतार (७)	४६४	१०. गणेशसहस्रनामस्तोत्रम्	५०९
पार्वती के मान से ममतासुर की उत्पत्ति	४६४	११. गणेशस्तोत्रम्	५२८
शम्बरासुर की प्रेरणा से दिग्विजय करना	४६७	१२. गणेशपञ्चरत्नस्तोत्रम्	५३०
ममतासुर का पराजित होना	४६९	१३. गणेशपञ्चचामरस्तोत्रम्	५३१
<b>८. अष्टम अध्याय</b>			
धूम्रवर्णवितार उपाख्यान (८)	४७०	१४. दुष्पिद्राजभुजङ्गप्रयातस्तोत्रम्	५३२
भ्रास्कर के अहं से अहंतासुर की उत्पत्ति	४७१	१५. गणपतिस्तवः	५३२
अधर्मधारक असुर का परामर्श करना	४७३	१६. गणेशस्तवराजः	५३४
अहंतासुर तथा धूम्रवर्ण का युद्ध	४७५	१७. महागणपतिस्तोत्रम्	५३५
अहंतासुर का धूम्रवर्ण की शरण में जाना	४७६	१८. एकदन्तगणेशस्तोत्रम्	५३८
<b>नवम खण्ड</b>			
<b>१. प्रथम अध्याय</b>			
प्रश्न : आवेश-पीड़ित मनुष्य के		१९. शङ्करादिकृतं गजाननस्तोत्रम् (१)	५४१
लक्षण-विषयक	४७९	२०. देवर्षिकृतं गजाननस्तोत्रम् (२)	५४२
		२१. गजाननस्तोत्रम् (३)	५४६
		२२. विनायक-विनतिः	५४७
		२३. गणपतिस्तोत्रम्	५४९
		२४. गणेशमानसपूजा	५५१
		२५. गणेशबाह्यपूजा	५५८
		२६. गणेश चालीसा	५६५
		२७. प्रार्थना : श्रीगणेशजी की	५६७

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

# श्रीगणेश-पुराण

## प्रथम ऋण्ड

### १. प्रथम अध्याय

## श्रीगणेशजी की कथा का प्रारम्भ

नैमिषे सूतमासीनमभिवाद्य महामतिम् ।

कथामृतरसास्वादकुशलः शौनकोऽब्रवीत् ॥

प्राचीन काल की बात है—नैमिषारण्य क्षेत्र में ऋषि-महर्षि और साधु-सन्तों का समाज जुड़ा था । उसमें श्रीसूतजी भी विद्यमान थे । शौनक जी ने उनकी सेवा में उपस्थित होकर निवेदन किया कि ‘हे अज्ञान रूप घोर तिमिर को नष्ट करने में करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमान श्रीसूतजी ! हमारे कानों के लिए अमृत के समान जीवन प्रदान करने वाले कथा तत्त्व का वर्णन कीजिए । हे सूतजी ! हमारे हृदयों में ज्ञान के प्रकाश की वृद्धि तथा भक्ति, वैराग्य और विवेक की उत्पत्ति जिस कथा से हो सकती हो, वह हमारे प्रति कहने की कृपा कीजिए ।’

शौनक जी की जिज्ञासा से सूतजी बड़े प्रसन्न हुए । पुरातन इतिहासों के स्मरण से उनका शरीर पुलकायमान हो रहा था । वे कुछ देर उसी

स्थिति में विराजमान रहकर कुछ विचार करते रहे और अन्त में बोले—शौनक जी ! इस विषय में आपके चित्त में बड़ी जिज्ञासा है । आप धन्य हैं जो सदैव ज्ञान की प्राप्ति में तत्पर रहते हुए विभिन्न पुराण-कथाओं की जिज्ञासा रखते हैं । आज मैं आपको ज्ञान के परम स्तोत्र रूप श्रीगणेश जी का जन्म-कर्म रूप चरित्र सुनाऊँगा । गणेशजी से ही सभी ज्ञानों, सभी विद्याओं का उद्भव हुआ है । अब आप सावधान चित्त से विराजमान हों और श्रीगणेश जी के ध्यान और नमस्कारपूर्वक उनका चरित्र श्रवण करें ।

नमस्तस्मै गणेशाय ब्रह्मविद्याप्रदायिने ।

येनागस्त्यसमः साक्षात् विज्ञसागरशोषणे ॥

कैसे हैं वे श्रीगणेश जो सभी प्रकार की ब्रह्मविद्याओं को प्रदान करने वाले अर्थात् ब्रह्म के सगुण और निर्गुण स्वरूप पर प्रकाश डालने और जीव-ब्रह्म का अभेद प्रतिपादन करने वाली विद्याओं के दाता हैं ।

वे विज्ञों के समुद्रों को महर्षि अगस्त्य के समान शोषण करने में समर्थ हैं, इसीलिए उनका नाम 'विज्ञ-सागर-शोषक' के नाम से प्रसिद्ध है, मैं उन भगवान् श्रीगणेश जी को नमस्कार करता हूँ ।

## प्रथमपूजा के अधिकारी श्रीगणेशजी

यह कहकर सूतजी कुछ समय के लिए मौन हो गए और फिर बोले—‘शौनक जी ! भगवान् गणेश जी ही सर्वप्रथम पूजा-प्राप्ति के अधिकारी हैं । किसी भी देवता की पूजा करो, पहिले उन्हों को पूजना होगा ।’

शौनक जी ने निवेदन किया—‘हे भगवन् ! हे सूत ! सर्वप्रथम यह बताने की कृपा कीजिए कि गणेश जी को प्रथम पूजा का अधिकार किस प्रकार प्राप्त हुआ ? इस विषय में मेरी बुद्धि मोह को प्राप्त हो रही है कि सृष्टि-रचयिता ब्रह्माजी, पालनकर्ता भगवान् नारायण और संहारकर्ता

शिवजी में से किसी को प्रथमपूजा का अधिकारी क्यों नहीं माना गया ? यह त्रिदेव ही तो सबसे बड़ा देवता माने जाते हैं ।'

सूतजी ने कहा—शौनक जी ! यह भी एक रहस्य ही है । देखो, अधिकार माँगने से नहीं मिलता, इसके लिए योग्यता होनी चाहिए । संसार में अनेकों देवी-देवता पूजे जाते हैं । पहिले जो जिसका इष्टदेव होता, वह उसी की पूजा किया करता है । इससे बड़े देवताओं के महत्त्व में कमी आने की आशंका उत्पन्न हो गई, इस कारण देवताओं में परस्पर विवाद होने लगा । वे उसका निर्णय प्राप्त करने के लिए शिवजी के पास पहुँचे और प्रणाम करके पूछने लगे—प्रभो ! हम सबमें प्रथमपूजा का अधिकारी कौन है ?

शिवजी सोचने लगे कि किसे प्रथमपूजा का अधिकारी मानें ? तभी उन्हें एक युक्ति सूझी, बोले—देवगण ! इसका निपटारा बातों से नहीं, तथ्यों से होगा । इसके लिए एक प्रतियोगिता रखनी होगी ।

## विश्व की परिक्रमा करने की प्रतियोगिता

देवगण उनका मुख देखने लगे । शंकित हृदय से सोचते थे कि कैसी प्रतियोगिता रहेगी ? यह शिवजी ने उनके मन के भाव ताढ़ लिये, इसलिए सान्त्वना-भरे शब्दों में बोले—‘घबराओ मत, कोई कठिन परीक्षा नहीं ली जायेगी । बस, इतना ही कि सभी अपने-अपने वाहनों पर चढ़कर संसार की परिक्रमा करो और फिर यहाँ लौट आओ । जो पहिले लौटेगा, वही सर्वप्रथमपूजा का अधिकारी होगा ।’

अब क्या देर थी, सभी अपने-अपने वाहन पर चढ़कर दौड़ पड़े । किसी का वाहन गजराज था तो किसी का सिंह, किसी का भैंसा तो किसी का मृग, किसी का हंस तो किसी का उत्लू, किसी का अश्व तो किसी का श्वान । अभिप्राय यह कि वाहनों की विविधता के दर्शन उस

समय जितने भले प्रकार से हो सकते थे, उतने अन्य समय में नहीं।

सबसे गया-बीता वाहन गणेशजी का था मूषक। उसे 'चूहा' भी कहते हैं। ऐसे वाहन के बल-भरोसे इस प्रतियोगिता में सफल होना तो क्या, सम्मिलित होना भी हास्यास्पद था। गणेश जी ने सोचा-छोड़ो, क्या होगा प्रतियोगिता में भाग लेने से? हम तो यहाँ बैठे रहकर ही तमाशा देखेंगे।

वे बहुत देर तक विचार करते रहे। अन्त में उन्हें एक युक्ति सूझी—'शिवजी स्वयं ही जगदात्मा हैं, यह संसार उन्हीं का प्रतिबिम्ब है, तब क्यों न इन्हीं की परिक्रमा कर दी जाये। इनकी परिक्रमा करने से ही संसार की परिक्रमा हो जायेगी।'

ऐसा निश्चय कर उन्होंने मूषक पर चढ़ कर शिवजी की परिक्रमा की और उनके समक्ष जा पहुँचे। शिवजी ने कहा—'तुमने परिक्रमा पूर्ण कर ली?' उन्होंने उत्तर दिया—'जी!' शिवजी सोचने लगे कि 'इसे तो यहाँ घूमते हुए देखा, फिर परिक्रमा कैसे कर आया?'

देवताओं का परिक्रमा करके लौटना आरम्भ हुआ और उन्होंने गणेशजी को वहाँ बैठे देखा तो माथा ठनक गया। फिर भी साहस करके बोले—'अरे, तुम विश्व की परिक्रमा के लिए नहीं गये?' गणेशजी ने कहा—'अरे, मैं! कबका यहाँ आ गया!' देवता बोले—'तुम्हें तो कहीं भी नहीं देखा?' गणेशजी ने उत्तर दिया—'देखते कहाँ से? समस्त संसार शिवजी में विद्यमान है, इनकी परिक्रमा करने से ही संसार की परिक्रमा पूर्ण हो गई।'

सूतजी बोले—'शौनक! इस प्रकार गणेशजी ने अपनी बुद्धि के बल पर ही विजय प्राप्त कर ली। उनका कथन सत्य था, इसलिए कोई विरोध करता भी तो कैसे? बस, उसी दिन से गणेश जी की प्रथमपूजा होने लगी।'



## २. द्वितीय अध्याय

### हरि अनन्ता हरि चरित अनन्ता

मृतजी बोले— हे शौनक जी ! यह एक तथ्य भी है कि गणेश जी ही उम्में पद्म भी हैं । वे बड़े देवता का भी कार्य-सिद्धि में विजयप्रसिद्धि हैं जो अन्न का आश्रव न लिया हो ।

हे शौनक ! वे देव भी बड़े दयालु हैं । नाम तो शिवजी का ही आश्रुतोष है किन्तु वे सर्वात्मा और सर्वरक्षक प्रभु तो शिव जी की अपेक्षा भी ज्ञानी ही प्रकट हो जाते हैं । उनका भक्त कभी किसी संकट में नहीं पड़ता । यदि प्रारब्ध-वशात् कभी किसी विपत्ति में पड़ भी जाता है तो, गणेश्वर की उपासना करने पर उनके अनुग्रह से उनके समस्त दुःख दूर होकर परम सुख की प्राप्ति होती है । शौनक ने कहा— ‘हे सूतजी ! हे महाभाग ! हे प्रभो ! मैं गणेश जी के विभिन्न चरित्रों का अध्ययन करना चाहता हूँ तो मुझे बताइए कि किस ग्रन्थ का अवलोकन करूँ ? हे दयामय ! आपको तो उनके समस्त चरित्र विदित हैं ही, यदि आप ही उन्हें सुनाने की कृपा करें तो मेरा अत्यधिक उपकार होगा ।’

सूतजी बोले— ‘हे शौनक ! भगवान् गणेश्वर के इतने चरित्र हैं, कि उन सबका कथन इस जिह्वा से सम्भव नहीं, क्योंकि ‘प्रभु अनन्त प्रभु चरित अनन्ता’ वाली बात समस्त विद्वान् ऋषि-मुनि कहते हैं । फिर भी गणेश जी प्रथमपूजा के अधिकारी होने के कारण समस्त देव-चरित्रों में जुड़े हुए हैं । इसलिए उनका प्रभाव भी सर्वाधिक व्यापक है । हे मुने ! हे शौनक ! वे भगवान् सर्व समर्थ हैं, वे सभी का तिरस्कार करने में समर्थ हैं, किन्तु उनका तिरस्कार कोई भी नहीं कर सकता । यह त्रैलोक्य उन्हीं भगवान् के संकेत पर नृत्य करता है । इसकी समस्त क्रियाएँ उन्हीं की इच्छा पर आश्रित हैं । हे शौनक ! भगवान् गणेश्वर स्वयं कहते हैं—

शिवे विष्णौ च शक्तौ च सूर्ये मयि नराधिप ।

यो भेदबुद्धियोगः स सम्यग्योगो मतो मम ॥

हे नरेश्वर ! हे वरेण्य ! शिव, विष्णु, शक्ति, सूर्य और मुझा गणेश में जो अभेद बुद्धियोग हैं, मेरे मत में वही सम्यक् योग है। इससे यह भी सिद्ध है कि समस्त देवता उन्हीं के स्वरूप हैं। वे ही भगवान् विभिन्न कार्य-रूपों के अनुसार अपना भिन्न-भिन्न नाम रखते हैं। हे मुनिश्रेष्ठ ! उन सब देवताओं के चरित्र भी उन्हीं गणराज के चरित्र हैं। यद्यपि सब चरित्र एक ही ग्रन्थ में मिलने सम्भव नहीं हैं, फिर भी गणेश्वर के अनेकों प्रमुख चरित्रों का वर्णन गणेश-पुराण में हुआ है।

## राजा सोमकान्त का वृत्तान्त-कथन

शौनक जी ने पूछा—‘हे प्रभो ! गणेश-पुराण का आरम्भ किस प्रकार हुआ ? यह मुझे बताने की कृपा करें। इसपर सूत जी कहने लगे—‘हे शौनक ! यद्यपि गणेश-पुराण है तो बहुत प्राचीन, क्योंकि भगवान् गणेश्वर तो आदि हैं, न जाने कब से गणेश जी अपने उपासकों पर कृपा करते चले आ रहे हैं। उनके अनन्त चरित्र हैं जिनका संग्रह एक महापुराण का रूप ले सकता है। उसे एक बार भगवान् नारायण ने नारद जी को और भगवान् ने शंकर और जगज्जननी पार्वती जी को सुनाया था।

बाद में वही पुराण संक्षेप रूप में ब्रह्माजी ने महर्षि वेदव्यास को सुनाया और फिर व्यास जी से महर्षि भृगु ने सुना। भृगु ने कृपा करके सौराष्ट्र के एक राजा सोमकान्त को सुनाया था। तब से वह पुराण अनेक कथाओं में विस्तृत होता और अनेक कथाओं से रहित होता हुआ अनेक रूप में प्रचलित है।

शौनक जी ने पूछा—‘भगवन् ! आप यह बताने का कष्ट करें कि राजा सोमकान्त कौन था ? उसने महर्षि से गणेश-पुराण का श्रवण कहाँ किया

था ? उस पुराण के श्रवण से उसे क्या-क्या उपलब्धियाँ हुईं ? हे नाथ ! मुझे श्रीगणेश्वर की कथा के प्रति उल्कण्ठा बढ़ती ही जा रही है ।

सूतजी बोले—‘हे शौनक ! सौराष्ट्र के देवनगर नाम की एक प्रसिद्ध राजधानी थी । वहाँ का राजा सोमकान्त था । वह अपनी प्रजा का पुत्र के समान पालन करता था । वह वेदज्ञान सम्पन्न, शस्त्र-विद्या में पारंगत एवं प्रबल प्रतापी राजा समस्त राजाओं में मान्य तथा अत्यन्त वैभवशाली था । उसका ऐश्वर्य कुवेर के भी ऐश्वर्य को लज्जित करता था । उसने अपने पराक्रम से अनेकों देश जीत लिए थे ।

उसकी पत्नी अत्यन्त रूपवती, गुणवती, धर्मज्ञा एवं पतिव्रत-धर्म का पालन करने वाली थी । वह सदैव अपने प्राणनाथ की सेवा में लगी रहती थी । उसका नाम सुधर्मा था । जैसे वह पतिव्रता थी, वैसे ही राजा भी एक-पनीव्रत का पालन करने वाला था ।

उसके हेमकन्त नामक एक सुन्दर पुत्र था । वह भी सभी विद्याओं का ज्ञान और अस्त्र-शस्त्रादि के अभ्यास में निपुण हो गया था । यह सभी श्रेष्ठ लक्षणों से सम्पन्न, सद्गुणी एवं प्रजाजनों के हितों का अत्यन्त पोषक था ।

इस प्रकार राजा सोमकान्त स्त्री-पुत्र, पशु-वाहन, राज्य एवं प्रतिष्ठा आदि से सब प्रकार सुखी था । उसे दुःख तो था ही नहीं । सभी राजागण उसका हार्दिक सम्मान करते थे तथा उसकी श्रेष्ठ कीर्ति भी संसारव्यापी थी ।

परन्तु युवावस्था के अन्त में सोमकान्त को घृणित कुष्ठरोग हो गया । उसके अनेक उपचार किये गए, किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ । रोग शीघ्रता से बढ़ने लगा और उसके कीड़े पड़ गये । जब रोग की अधिक वृद्धि होने लगी और उसका कोई उपाय न हो सका तो राजा ने मन्त्रियों को बुलाकर कहा—‘सुव्रतो ! जाने किस कारण यह रोग मुझे पीड़ित कर रहा है ।

अवश्य ही यह किसी पूर्व जन्म के पाप का फल होगा । इसलिए मैं अब अपना समस्त राज-पाट छोड़कर वन में रहूँगा । मेरे पुत्र हेमकान्त को मेरे समान मानकर राज्य शासन का धर्मपूर्वक संचालन कराते रहें ।'

यह कहकर राजा ने शुभ दिन दिखवाकर अपने पुत्र हेमकान्त को राज्यपद पर अभिषिक्त किया और अपनी पत्नी सुधर्मा के साथ निर्जन वन की ओर चल दिया । प्रजापालक राजा के वियोग में समस्त प्रजाजन अश्रु बहाते हुए उनके साथ चले । राज्य की सीमा पर पहुँचकर राजा ने अपने पुत्र, अमात्यगण और प्रजाजनों को समझाया—‘आप सब लोग धर्म के जानने वाले, श्रेष्ठ आचरण में तत्पर एवं सहदय हैं । यह संसार तो वैसे भी परिवर्तनशील है । जो आज है, वह कल नहीं था और आने वाले कल में भी नहीं रहेगा । इसलिए मेरे जाने से दुःख का कोई कारण नहीं है । मेरे स्थान पर मेरा पुत्र सभी कार्यों को करेगा, इसलिए आप सब उसके अनुशासन में रहते हुए उसे सदैव सम्मति देते रहें ।’

फिर पुत्र से कहा—‘बेटा ! यह स्थिति सभी के समक्ष आती रही है । हमारे पूर्व पुरुष भी परम्परागत रूप से वृद्धावस्था आने पर वन में जाते रहे हैं । मैं कुछ समय पहिले ही वन में जा रहा हूँ तो कुछ पहिले या पीछे जाने में कोई अन्तर नहीं पड़ता ।

‘यदि कुछ वर्ष बाद जाऊँ तब भी मोह का त्याग करना ही होगा । इसलिए, हे वत्स ! तुम दुःखित मत होओ और मेरी आज्ञा मानकर राज्य-शासन को ठीक प्रकार चलाओ । ध्यान रखना, क्षत्रिय धर्म का कभी त्याग न करना और प्रजा को सदा सुखी रखना ।’

इस प्रकार राजा सोमकान्त ने सभी को समझा-बुझाकर वहाँ से वापस लौटाया और स्वयं अपनी पतिव्रता भार्या के साथ वन में प्रवेश किया । पुत्र हेमकान्त के आग्रह से उसने सुबल और ज्ञानगम्य नामक दो अमात्यों को भी साथ ले लिया । उन सबने एक समतल एवं सुन्दर स्थान देखकर वहाँ विश्राम किया । तभी उन्हें एक मुनिकुमार दिखाई दिया ।

गजा ने उससे पूछा—‘तुम कौन हो ? कहाँ रहते हो ? यदि उचित समझो तो मुझे बताओ ।’

मुनि-बालक ने कोमल वाणी में कहा—‘मैं महर्षि भृगु का पुत्र हूँ, मेरा नाम च्यवन है । हमारा आश्रम निकट में ही है । अब आप भी अपना परिचय दीजिए ।’

गजा ने कहा—‘मुनिकुमार ! आपका परिचय पाकर मुझे बड़ी सम्झौता हुँ । मैं सौराष्ट्र के देवनगर नामक राज्य का अधिपति रहा हूँ । अब आपने पुत्र को राज्य देकर मैंने अरण्य की शरण ली है । मुझे कुष्ठ रोग अन्यन्त पीड़ित किए हुए हैं, उसकी निवृत्ति का कोई उपाय करने वाला हो तो कृपाकर मुझे बताइए ।’

मुनिकुमार ने कहा—‘मैं अपने पिताजी से अपना वृत्तान्त कहता हूँ, फिर वे जैसा कहेंगे, आपको बताऊँगा ।’

यह कहकर मुनि-बालक चला गया और कुछ देर में ही आकर बोला—‘राजन् ! मैंने आपका वृत्तान्त अपने पिताजी को बताया । उनकी आत्मा हुँड़ है कि आप सब मेरे साथ आश्रम में चलकर उनसे भेंट करें तभी आपके रोग के विषय में भी विचार किया जायेगा ।’

## राजा सोमकान्त के पूर्व जन्म का वृत्तान्त भृगुद्वारा वर्णन

राजा अपनी पत्नी और अमात्यों के सहित च्यवन के साथ-साथ भृगु आश्रम में जा पहुँचा और उन्हें प्रणाम कर बोला—‘हे भगवन् ! हे महर्षि ! मैं आपकी शरण हूँ, आप मुझ कुष्ठी पर कृपा कीजिए ।’

महर्षि बोले—‘राजन् ! यह तुम्हारे किसी पूर्वजन्मकृत पाप का ही उद्दय हो गया है । इसका उपाय मैं विचार करके बताऊँगा । आज तो तुम मन्त्र स्नानादि से निवृत्त होकर रात्रि-विश्राम करो ।’

महर्षि की आज्ञानुसार सबने स्नान, भोजन आदि के उपरान्त रात्रि व्यतीत की और प्रातः स्नानादि नित्यकर्मों से निवृत्त होकर महर्षि की सेवा में उपस्थित हुए। महर्षि ने कहा—‘राजन् ! मैंने तुम्हारे पूर्वजन्म का वृत्तान्त जान लिया है और यह भी विदित कर लिया है कि किस पाप के फल से तुम्हें इस घृणित रोग की प्राप्ति हुई है। यदि तुम चाहो तो उसे सुना दूँ।’

राजा ने हाथ जोड़कर निवेदन किया—‘बड़ी कृपा होगी मुनिनाथ ! मैं उसे सुनने के लिए उत्कण्ठित हूँ।’

महर्षि ने कहा—‘तुम पूर्व जन्म में एक धनवान वैश्य के लाड़ले पुत्र थे। वह वैश्य विंध्याचल के निकट कौल्हार नामक ग्राम में निवास करता था। उसकी पत्नी का नाम सुलोचना था। तुम उसी वैश्य-दम्पति के पुत्र हुए। तुम्हारा नाम ‘कामद’ था।

‘तुम्हारा लालन-पालन बड़े लाड़-चाव से हुआ। उन्होंने तुम्हारा विवाह एक अत्यन्त सुन्दरी वैश्य-कन्या से कर दिया था जिसका नाम कुटुम्बिनी था। यद्यपि तुम्हारी भार्या सुशीला थी और तुम्हें सदैव धर्म में निरत देखना चाहती थी, किन्तु तुम्हारा स्वभाव वासनान्धि होने के कारण दिन-प्रतिदिन उच्छृङ्खल होता जा रहा था। किन्तु माता-पिता भी धार्मिक थे, इसलिए उनके सामने तुम्हारी उच्छृङ्खलता दबी रही। परन्तु माता-पिता की मृत्यु के बाद तुम निरंकुश हो गये और अपनी पत्नी की बात भी नहीं मानते थे। तुम्हें अनाचार में प्रवृत्त देखकर उसे दुःख होता था, तो भी उसका कुछ वश न चलता था।

‘तुम्हारी उन्मत्तता चरम सीमा पर थी। अपनों से भी द्वेष और क्रूरता का व्यवहार किया करते थे। हत्या आदि करा देना तुम्हारे लिए सामान्य बात हो गई। पीड़ित व्यक्तियों ने तुम्हारे विरुद्ध राजा से पुकार की। अभियोग चला और तुम्हें राज्य की सीमा से भी बाहर चले जाने का आदेश हुआ। तब तुम घर छोड़कर किसी निर्जन वन में रहने लगे। उस समय तुम्हारा कार्य लोगों को लूटना और हत्या करना ही रह गया।

‘एक दिन मध्याह्न काल था। गुणवर्धक नामक एक विद्वान् ब्राह्मण उधर से निकला। बेचारा अपनी पत्नी को लिवाने के लिए ससुराल जा रहा था। तुमने उस ब्राह्मण युवक को पकड़ कर लूट लिया। प्रतिरोध करने पर उसे मारने लगे तो वह चीत्कार करने लगा—मुझे मत मार, मत मार। देख, मैं आपका दूसरा विवाह हुआ है, मैं पत्नी को लेने के लिए जा रहा हूँ।

‘किन्तु तुम तो क्रोधावेश में ऐसे लीन हो रहे थे कि तुमने उसकी बात सुनकर भी नहीं सुनी। जब उसे मारने लगे तो उसने शाप दे दिया—‘अरे हन्तार! मेरी हत्या के पाप से तू सहस्र कल्प तक घोर नरक भोगेगा।’

‘तुमने उसकी कोई चिन्ता न की और सिर काट लिया। राजन्! तुमने एमी-एसी एक नहीं, बल्कि अनेक निरीह हत्याएँ की थीं, जिनकी गणना करना भी पाप है।

‘इस प्रकार इस जन्म में तुमने घोर पाप कर्म किये थे, किन्तु बुढ़ापा आने पर जब अशक्त हो गये तब तुम्हारे साथ जो कूरकर्मा थे वे भी किनारा कर गये। उन्होंने सोच लिया कि अब तो इसे खिलाना भी पड़ेगा, इसलिए मरने दो यहीं।’

## अमोघ प्रभाव गणेश-उपासना का कथन

‘राजन्! अब तुम निरालम्ब थे, चल-फिर तो सकते ही नहीं थे, भूख में पीड़ित रहने के कारण रोगों ने भी घेर लिया। उधर से जो कोई निकलता, तुम्हें घृणा की दृष्टि से देखता हुआ चला जाता। तब तुम आहार की खोज में बड़ी कठिनाई से चलते हुए एक जीर्णशीर्ण देवालय में जा पहुँचे। उसमें भगवान् गणेश्वर की प्रतिमा विद्यमान थी। तब न जाने किस पुण्य के उदय होने से तुम्हारे मन में गणेशजी के प्रति भक्ति-भाव जाग्रत् हुआ। तुम निराहार रहकर उनकी उपासना करने लगे। उससे तुम्हें मवकुछ मिला और रोग भी कम हुआ।

‘राजन् ! तुमने अपने साथियों की दृष्टि बचाकर बहुत-सा धन एक स्थान पर गाड़ दिया था । अब तुमने उस धन को उसे देवालय के जीर्णोद्धार में लगाने का निश्चय किया । शिल्पी बुलाकर उस मन्दिर को सुन्दर और भव्य बनवा दिया । इस कारण कुछ्याति सुख्याति में बदलने लगी ।

‘फिर यथासमय तुम्हारी मृत्यु हुई । यमदूतों ने पकड़कर तुम्हें यमराज के समक्ष उपस्थित किया । यमराज तुमसे बोले—‘जीव ! तुमने पाप और पुण्य दोनों ही किए हैं और दोनों का ही भोग तुम्हें भोगना है । किन्तु पहले पाप का फल भोगना चाहते हो या पुण्य का ?’ इसके उत्तर में तुमने प्रथम अपने पुण्यकर्मों के भोग की इच्छा प्रकट की और इसीलिए उन्होंने तुम्हें राजकुल में जन्म लेने के लिए भेज दिया । पूर्व जन्म में तुमने भगवान् गणाध्यक्ष का सुन्दर एवं भव्य मन्दिर बनवाया था, इसलिए तुम्हें सुन्दर देह की प्राप्ति हुई है ।’

यह कहकर महर्षि भृगु कुछ रुके, क्योंकि उन्होंने देखा कि राजा को इस वृत्तान्त पर शंका हो रही है । तभी महर्षि के शरीर में असंख्य विकराल पक्षी उत्पन्न होकर राजा की ओर झपटे । उनकी चोंच बड़ी तीक्ष्ण थी, जिनसे वे राजा के शरीर को नोच-नोच कर खाने लगे । उसके कारण उत्पन्न असह्य पीड़ा से व्याकुल हुए राजा ने महर्षि के समक्ष हाथ जोड़कर निवेदन किया—‘प्रभो ! आपका आश्रम तो समस्त दोष, द्वेष आदि से परे है और यहाँ मैं आपकी शरण में बैठा हूँ तब यह पक्षी मुझे अकारण ही क्यों पीड़ित कर रहे हैं ? हे मुनिनाथ ! इनसे मेरी रक्षा कीजिए ।’

महर्षि ने राजा के आर्त्तवचन सुनकर सान्त्वना देते हुए कहा—‘राजन् ! तुमने मेरे वचनों में शंका की थी और जो मुझ सत्यवादी के कथन में शंका करता है, उसे खाने के लिए मेरे शरीर से इसी प्रकार पक्षी प्रकट हो जाते हैं, जो कि मेरे हुंकार करने पर भस्म हो जाया करते हैं ।’

यह कहकर महर्षि ने हुंकार की और तभी वे समस्त पक्षी भस्म हो गये । राजा श्रद्धावनत होकर उनके समक्ष अश्रुपात करता हुआ बोला—‘प्रभो !

अब आप पाप से मुक्त होने का उपाय कीजिए ।'

महर्षि ने कुछ विचार कर कहा—‘राजन् ! तुमपर भगवान् गणेश्वर की कृपा सहज रूप से है और वे ही प्रभु तुम्हारे पापों को भी दूर करने में समर्थ हैं । इसलिए तुम उनके पाप-नाशक चरित्रों का श्रवण करो । गणेश-पुराण में उनके चरित्रों का भले प्रकार वर्णन हुआ है, अतएव तुम श्रद्धाभवितपूर्वक उसी को सुनने में चित्त लगाओ ।’

राजा ने प्रार्थना की—‘महामुने ! मैंने गणेश-पुराण का नाम भी आज तक नहीं सुना तो उनके सुनने का सौभाग्य कैसे प्राप्त कर सकूँगा ? हे नाश ! आपसे अधिक ज्ञानी और प्रकाण्ड विद्वान् और कौन हो सकता है ? आप ही मुझपर कृपा कीजिए ।’

महर्षि ने राजा की दीनता देखकर उसके शरीर पर अपने कमण्डलु का मन्त्रपूत जल छिड़का । तभी राजा को एक छींक आई और नासिका में एक अत्यन्त छोटा काले वर्ण का पुरुष बाहर निकल आया । देखते-देखते वह बढ़ गया । उसके भयंकर रूप को देखकर राजा कुछ भयभीत हुआ, किन्तु समस्त आश्रमवासी वहाँ से भाग गये । वह पुरुष महर्षि के समक्ष हाथ जोड़कर खड़ा हो गया ।

भूगु ने उसकी ओर देखा और कुछ उच्च स्वर में बोले—‘तू कौन है ? क्या चाहता है ?’ वह बोला—‘मैं साक्षात् पाप हूँ, समस्त पापियों के शरीर में मेरा निवास है । आपके मन्त्रपूत जल के स्पर्श से मुझे विवश होकर गजा के शरीर से बाहर निकलना पड़ा है । अब मुझे बड़ी भूख लगी है, बताइये, क्या खाऊँ और कहाँ रहूँ ?’

महर्षि बोले—‘तू उस आम के अवकाश स्थान में निवास कर और उसी वृक्ष के पत्ते खाकर जीवन-निर्वाह कर ।’ यह सुनते ही वह पुरुष आम के वृक्ष के पास पहुँचा, किन्तु उसके स्पर्श मात्र से वह वृक्ष जलकर अस्म हो गया । फिर जब पाप पुरुष को रहने के लिए कोई स्थान दिखाई न दिया तो वह भी अन्तर्हित हो गया ।



### ३. तृतीय अध्याय

## राजा द्वारा गणेश-पुराण श्रवण का संकल्प कथन

महर्षि बोले—‘राजन् ! कालान्तर में यह वृक्ष पुनः अपना पूर्वरूप धारण करेगा । जब तक यह पुनः उत्पन्न न हो तब तक मैं तुम्हें गणेश-पुराण का श्रवण कराता रहूँगा । तुम पुराण श्रवण के संकल्पपूर्वक आदि-देव गणेशजी का पूजन करो, तब मैं गणेश-पुराण की कथा का आरम्भ करूँगा ।’

मुनिराज के आदेशानुसार राजा ने पुराण-श्रवण का संकल्प किया । उसी समय राजा ने अनुभव किया कि उसकी समस्त पीड़ाएँ दूर हो गई हैं । दृष्टि डाली तो कुछ रोग का अब कहीं चिह्न भी शेष नहीं रह गया था । अपने को पूर्णरूप से रोग-रहित एवं पूर्ववत् सुन्दर हुआ देखकर राजा के आश्चर्य की सीमा न रही और उसने महर्षि के चरण पकड़ लिये और निवेदन किया कि प्रभो ! मुझे गणेश-पुराण का विस्तारपूर्वक श्रवण कराइये ।’

महर्षि ने कहा—‘राजन् ! यह गणेश-पुराण समस्त पापों और संकटों को दूर करने वाला है, तुम इसे ध्यानपूर्वक सुनो । इसका श्रवण गणपति-भक्तों को ही करना-कराना चाहिए, अन्य किसी को नहीं । कलियुग में पापों की अधिक वृद्धि होगी और लोग कष्ट-सहन में असमर्थ एवं अल्पाद्यु होंगे । उनके पाप दूर करने का कोई साधन होना चाहिए ।’ इस विचार से महर्षि वेदव्यास ने मुझे सुनाया था । उन्हीं की कृपा से मैं भगवान् गणाध्यक्ष के महान् चरित्रों को सुनने का सौभाग्य प्राप्त कर सका था ।

‘महाराज ! भगवान् गजानन अपने सरल स्वभाव वाले भक्तों को सब कुछ प्रदान करने में समर्थ हैं । निरभिमान प्राणियों पर वे सदैव अनुग्रह

करने हैं, किन्तु मिथ्याभिमानी किसी को भी नहीं रहने देते। उन्होंने गर्व होने पर महा-महिमा से सम्पन्न एवं समस्त वेद-शास्त्रों के पारंगत भगवान् वेदव्यासजी को भी तिरस्कृत कर दिया था। उनके हृदय में अपने-पराये, बली-निर्बल या मूर्ख-विद्वान् का कोई भी भेद नहीं है। अभिमानी मनुष्यों का अभिमान-खण्डन करना तो उन्होंने अपना बहुत आवश्यक कर्म मान लिंग है।

**गच्छ ने आश्चर्य में पूछा—** 'प्रभो ! भगवान् वेदव्यास जी तो समस्त दुर्युणों, दोषों और दुर्बलताओं से परे पूर्णज्ञानी और भगवान् नारायण के ही अंशावतार माने जाते हैं, उनमें अभिमान का आविर्भाव कैसे हो गया ? कृपाकर यह सभी बातें बताने का कष्ट करें।'

महर्षि भृगु ने कहा—'राजेन्द्र ! वेदव्यासजी ने वेद के चार विभाग कर उनकी पृथक्-पृथक् संहिताएँ बना दीं, जिससे उनका रहस्य समझना कठिन नहीं रहा। उनके उस अपूर्व कार्य की विद्वत्समाज में बड़ी प्रशংসा हुँ। इससे उन्हें अपने पर अत्यन्त गर्व होने लगा। फिर उस वेद ज्ञान को अधिक सुलभ करने के उद्देश्य से उन्होंने पुराणों की रचना आरम्भ की।'

## वेदव्यास की बुद्धि का भ्रमित होना कैसे ?

महाराज ! श्रीगणेशजी आदिदेव हैं, इसलिए समस्त कार्यों में गणेशजी का प्रथम स्मरण करने की परिपाटी प्राचीन काल से चली आती है। किन्तु श्रीवेदव्यासजी अपनी पुराण-रचना के आरम्भ में भगवान् गणेश्वर की वन्दना करना भूल गये। उसके फलस्वरूप उनकी स्मरणशक्ति क्षीण होने लगी। वे अनेक मुख्य बातों को भूल जाते। बहुत याद करने पर भी अनेक बातों में उन्हें सफलता न मिल पाती। वे किंकर्त्तव्यविमूढ़-से होकर लोकपितामह ब्रह्माजी की सेवा में उपस्थित हुए और उनकी वन्दना कर बोले—'ब्रह्मन् ! मैंने वेद के चार विभाग करने के पश्चात् पुराणों की रचना आरम्भ की थी, किन्तु मुझे बड़ा आश्चर्य है कि अब कुछ सूझता

ही नहीं कि मैं क्या लिखूँ ? हे प्रभो ! मेरे ज्ञान नष्ट होने का क्या कारण है, यह बताने की कृपा करें ।'

ब्रह्माजी ने ध्यान लगाया और तब बोले—‘व्यास ! तुम अपनी विद्या के गर्व में अधिक भर गये हो, इसलिए भगवान् गणेश्वर को भी भूल गये । तुमने पुराण रचना के आरम्भ में उन आदिदेव की वन्दना और मंगलाचरण तक नहीं किया है । तब फिर तुम्हारा ज्ञान क्यों न नष्ट होता ? अब तुम गणेशजी को ही प्रसन्न करो ।’

व्यासजी को अपनी भूल का ज्ञान तो हो गया, किन्तु उन्हें गणेशजी के विषय में अभी कुछ भी स्मरण नहीं आया, इसलिए उन्होंने विनय-पूर्वक ब्रह्माजी से पूछा—‘प्रभो ! मुझे गणेशजी के विषय में कुछ भी ज्ञान नहीं है । आप बतायें कि गणेशजी कौन हैं ? उनका स्वरूप कैसा है ? उनके चरित्र की विशेषता क्या है ?’

ब्रह्माजी ने कहा—‘सत्यवतीनन्दन ! गणेशजी तो सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं महामहिम परात्पर ब्रह्म हैं । आगम-शास्त्र में उनके सात करोड़ मन्त्र उपलब्ध हैं । उनमें षडक्षरी और एकाक्षरी मन्त्र अधिक सरल हैं । जो उनकी उपासना करने वाले भक्त हैं, उनके दर्शन करने से भी समस्त विज्ञ नष्ट हो जाते हैं । एक बार शिवजी ने उनकी स्थापना-विधि पर प्रकाश डाला था, उसे मैं तुम्हारे प्रति कहता हूँ ।

‘हे व्यास ! प्रातःकाल शौचादि से निवृत्त होकर पवित्र होकर पवित्र जल में स्नान करे और शुद्ध वस्त्र धारण करके श्रेष्ठ आसन पर पूर्वाभिमुख बैठकर आचमन, प्राणायाम और मानसोपचार द्वारा पूजन करके प्रणव बीज मन्त्र के सहित उनके षडक्षरी या एकाक्षरी मन्त्र का अनुष्ठान विधि पूर्वक जप करे । जब तक भगवान् गजानन के स्वरूप के दर्शन हो जाय तब तक जप अखण्ड रूप से निरन्तर चलता रहे । इस प्रकार की आराधना करने पर भगवान् गणेश्वर अवश्य प्रसन्न हो जाते हैं ।’

ब्रह्माजी से उपासना-विधि सीखकर व्यासजी ने उन्हें प्रणाम किया और बोले—‘ब्रह्मन् ! गणेश-मन्त्र और बीज कौन-सा है ? उसका जप अब तक किस-किसने किया है और उसे क्या-क्या सिद्धियाँ प्राप्त हुई हैं ?’

ब्रह्माजी ने कहा—‘व्यास ! श्रीगणेश्वर ओंकारमय हैं। समस्त वेद उन्हीं का गान करते हैं। प्रणव समस्त मन्त्रों का बीज है, और उसके द्वारा भगवान् गजानन का ही जप या स्तवन होता है। अकेले प्रणव की ही बड़ी महिमा है। उसी का जप करके देवता, मनुष्य, ऋषि-मुनि आदि सभी अपने-अपने अभीष्ट की सिद्धि कर सकते हैं।’

व्यासजी बोले—‘इसे कुछ विस्तार से समझाकर कहिए। गणेशजी की महिमा के विषय में मेरी जिज्ञासा बढ़ती जा रही है। हे पितामह ! मुझ पर कृपा कीजिए।’

## गणेश का त्रिदेवों को कार्य सौंपने का घर्णन

ब्रह्माजी बोले—‘द्वैपायन ! मैं तुम्हें प्राचीन काल का एक प्रसंग सुनाता हूँ—जब संसार का प्रलयकाल उपस्थित हुआ तब जल, वायु के घोर उत्पात से सृष्टि नष्ट हो गई।

‘समस्त सृष्टि ही माया-मोह में डूबकर अदृश्य हो गई। उस समय मैंने, विष्णु ने और शिव ने एक साथ बैठकर विचार किया कि अब क्या किया जाय ? कोई उपाय भी नहीं सूझता। फिर पूछें भी तो किससे ? कहीं कोई भी दिखाई नहीं देता था।

‘तो सत्यवतीसुवन ! हम तीनों ने पाताल-लोक जाकर घोर तपस्या की, किन्तु कोई फल न निकला। हम बहुत थक गये तो वहाँ से पृथिवी पर आकर धूमने लगे। सर्वत्र अन्धकार था, उसमें एक जलाशय दिखायी दिया। उसमें बड़ा तेज था, जिसकी सहायता से आकाश में गमन करने की बड़ी सुविधा प्रतीत हुई। किन्तु भूख-प्यास से व्याकुल होने के कारण हम अधिक भ्रमण में भी असमर्थ हो गए।

हम थक कर एक स्थान पर रुके ही थे कि हमारे समक्ष करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाश प्रकट हो गया। हमने ध्यान से देखा तो उस प्रकाशपुञ्ज में भगवान् गणाध्यक्ष विराजमान थे। हमने तुरन्त ही उन्हें प्रणाम कर स्तुति आरम्भ की—

नमो नमो विश्वेभृतेऽखिलेश नमो नमः कारणकारणाय ।  
नमो नमो वेदविदामदृश्य नमो नमः सर्ववरप्रदाय ॥

हे विश्व के भरणकर्ता ! अखिलेश्वर ! आपको नमस्कार है। हे समस्त कारणों के भी कारण ! हे प्रभो ! आपको नमस्कार है। हे नाथ ! आप वेदज्ञों के लिए भी अदृश्य ही रहते हैं। हे समस्त वरों के प्रदान करने वाले परात्पर ब्रह्म ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है।

६ हम त्रिवेदों की स्तुति सुनकर आदिदेव गणेश्वर ने कहा—‘त्रिदेव ! मैं प्रसन्न हूँ, आप वर माँगिये।’ तब हमने प्रार्थना की—‘प्रभो ! हम क्या माँगें, यह हमारी समझ में ही नहीं आता। इसलिए आप ही हमें उचित आदेश दीजिए, वही हमारे लिए श्रेष्ठ वर होगा।’

गणाधिपति ने मुसकराते हुए कहा—‘ब्रह्मा ! विष्णु ! शिव ! मैं आप तीनों को पृथक्-पृथक् तीन कार्य देना उचित समझता हूँ। चतुरानन ! आप सृष्टि-रचना का कार्य करो, विष्णु उनके पालन का भार लें और अन्त में शिव उसका संहार कर दें।’

यह कहकर उन्होंने ब्रह्माजी को सृष्टि रचने की शक्ति दी और विष्णुजी को संसार के पालन की सामर्थ्य प्रदान करते हुए अपने दशाक्षरी मन्त्र ‘गं’ क्षिप्रप्रसादनाय नमः’ का उपदेश दिया। फिर शिवजी को अपना एकाक्षरी मन्त्र ‘गं’ और षडक्षरी मन्त्र ‘वक्रतुण्डाय हुम्’ तथा समस्त आगम विद्या और संहारक शक्ति प्रदान कर दी।

तब ब्रह्माजी ने निवेदन किया—‘हे देवाधिदेव ! हे गणाध्यक्ष ! हे सर्वशक्तिमान् प्रभो ! मैं सृष्टि के विषय में कुछ भी नहीं जानता। उसे मैंने कभी देखा तो क्या, सुना भी नहीं। तब उसकी रचना कैसे कर पाऊँगा ?’

गणेश्वर बोले—‘हे चतुर्मुख ! सृष्टि का दर्शन करना है तो मेरे शरीर में विद्यमान अनन्त ब्रह्माण्डों का अवलोकन करो । फिर तो मेरी कृपा से तुम सहज रूप से ही सब कार्य स्वयं करने लगोगे ।’

हे मुने ! यह कहकर उन्होंने मुझे दिव्य दृष्टि दी और फिर अपने प्राय के साथ भीतर खींच लिया । उनके उदर में पहुँचकर मैंने अनन्त ब्रह्माण्डों के दर्शन किए । वहाँ मैंने समस्त जीवों के साथ स्वयं को, विष्णु के और शिव के ओं देखा । जो दृश्य एक ब्रह्माण्ड में दिखाई दिया, वही अब ब्रह्माण्डों में आ देखे थे, जिससे मैं भ्रमित होकर गणेशजी की स्तुति करने लगा । तब गणेशजी ने मुझे अपने निःश्वास के साथ बाहर निकाल दिया ।

बाहर निकलकर मैंने देखा तो कोई नहीं था । न विष्णु, न शिव और न भगवान् गणेश्वर ही । तब मैं सृष्टि-रचना का संकल्प करने लगा । मुझे ममम्न वेद-शास्त्रों का स्वतः ज्ञान हो गया था । संसार में मेरे समान वेदज्ञ कोड़ था ही नहीं, इसलिए सर्वत्र मेरी प्रशंसा होने लगी, जिससे मन में बड़े आरी अभिमान की उत्पत्ति हो गई ।

बस, वह अभिमान मेरे कार्य में पूर्ण रूप से बाधक बन गया । सृष्टि-रचना के समय अनेकानेक विष्णु आ उपस्थित हुए । तब मैं भगवान् गणेश्वर का ही ध्यान करने लगा और मैंने उनकी स्तुति करते हुए केवल इतना ही कहा—‘प्रभो ! इस विपत्ति से उबारिये । हेरम्ब ! मुझपर कृपा कीजिए ।’ तभी मैंने आकाशवाणी सुनी—‘चतुरानन ! किसी वट वृक्ष के नीचे बैठकर तपस्या करो । साथ ही, भगवान् गणेश्वर का ध्यान और मन्त्र-जप भी करते रहो ।’

## ब्रह्माजी ने की, गजानन की उपासना

महर्षि भृगु ने राजा सोमकान्त के प्रति कहा—‘राजन् ! तब ब्रह्माजी ने व्यासदेव को बताया कि आकाशवाणी सुनने के पश्चात् मुझे एक स्वप्न

दिखाई दिया कि प्रलय में सब कुछ लीन हो जाने पर भी केवल एक विशाल वटवृक्ष ही शेष बचा रहा है। उस वृक्ष के एक पत्र पर कोई बहुत छोटा बालक लेटा हुआ है। मैंने ध्यान से देखा तो उसका रूप भगवान् विनायक-देव के ही समान था। उसके दर्शन कर मुझे बड़ा आनन्द हुआ और मैं पुनः गणेशमन्त्र का जप करने लगा।

‘हे मुनि ! तभी मैंने देखा कि वह बालक धीरे-धीरे मेरे पास आ गया है। उसने कहा—‘चतुरानन ! समस्त चिन्ताओं को त्याग कर मेरे एकाक्षरी मन्त्र का दस लाख जप करो। जप का यह अनुष्ठान पूर्ण होने पर तुम मेरा साक्षात् दर्शन करोगे।’ बस, यह सुखद स्वप्न देखकर मेरी नींद खुल गई।

‘हे व्यास ! फिर मैंने एकाक्षरी मन्त्र का जपानुष्ठान आरम्भ किया। जिस प्रकार भी सम्भव हुआ, मैंने उन आदिदेव को पूर्ण प्रसन्न करने का प्रयास किया। अनुष्ठान पूर्ण होने पर मुझे भगवान् गणेश्वर के साक्षात् दर्शन हुए। उनके अत्यन्त तेजस्वी और विलक्षण रूप के समक्ष मेरे नेत्रों में चकाचौंध भर गई और स्मृति भी नष्ट हो गई।’

उसी समय मेरे कानों में भगवान् गजानन की गम्भीर वाणी सुनाई दी—‘चतुरानन ! स्वप्न में मैंने तुम्हें प्रत्यक्ष दर्शन देने का वचन दिया था, उसे मैंने पूरा कर दिया है। अब तुम अपना अभिलिष्ट वर मुझसे माँग लो।’

‘हे मुने ! मैंने गजानन भगवान् को प्रणाम कर निवेदन किया—प्रभो ! कार्य में उपस्थित सभी विष दूर हो जायें और मुझे शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति हो जिससे मैं आपके गुणानुवाद में भी समर्थ हो सकूँ, इसपर गणेश्वर प्रभु ‘तथास्तु’ कहकर अन्तर्धान हो गये।

महर्षि भृगु बोले—‘हे राजन् ! भगवान् गणाध्यक्ष के अदृश्य हो जाने पर ब्रह्माजी ने सर्ग-रचना का आरम्भ किया। सर्वप्रथम उन्होंने मरीच्यादि चौदह मानस-पुत्र उत्पन्न किये और उन्हें आदेश दिया कि सृष्टि रचो।

किन्तु उन्होंने अति तपस्वी और अति ज्ञानी होने के कारण चतुरानन के आदेश पर ध्यान नहीं दिया ।'

फिर विवश हुए चतुर्मुख ने स्वयं ही सृष्टि की रचना की और निश्चिन्त होकर प्रभु-चिन्तन करने लगे। इस प्रकार ब्रह्मा जी को मर्ग-रचना में जो सफलता प्राप्त हुई, उसका पूर्ण श्रेय भगवान् गणेश्वर की उपासना का ही है।

**श्रीगणेश** ने सून ज्ञान में पूछा—प्रभो ! गणेश्वर का पूजन केवल ब्रह्मा जी ने किया था, अथवा किसी अन्य देवता ने भी ? विष्णु और शिव तो स्वयं स्वंजन्मिनमान् प्रभु हैं। समस्त विश्व का पालन और संहार क्रमशः यही दोनों करते हैं। इसलिए, यह दोनों ही अपने-अपने कार्यों में समर्थ हैं, फिर वह गणेश का पूजन क्यों करते होंगे ?

उनकी बात सुनकर सूतजी को हँसी आ गई, बोले—‘हे मुने ! मैं समझ रहा हूँ कि तुम ऐसे अटपटे प्रश्न क्यों कर रहे हो ? अवश्य ही तुम इन प्रश्नों के द्वारा लोक-कल्याण का साधन करना चाहते हो। वस्तुतः तुम्हारा यह विचार समस्त विश्व के हित में होने के कारण अत्यन्त प्रशंसनीय है।

‘हे शौनक ! अब मैं तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर देता हूँ, सुनो श्रीगणाध्यक्ष का पूजन समस्त देवताओं ने समय-समय पर किया है। जब-जब, जिस-जिस देवता के कार्य में विष्णु-व्यवधान की उपस्थिति हुई तब-तब, वही-वही देवता उन प्रभु की भक्तिभाव-पूर्वक आराधना में प्रवृत्त हुए। यहाँ तक कि समस्त शक्ति स्वरूपा देवियों ने भी उन गणपति की उपासना करके अपने-अपने अभीष्ट की प्राप्ति की हैं।’

## पिछोश्वर की उपासना भगवान् विष्णु द्वारा

हे मुने ! गणेश जी का पूजन ब्रह्मा जी ने भी किया था, उसका वर्णन तो मैं कर ही चुका हूँ। भगवान् विष्णु ने भी संकटग्रस्त होने पर उन्हीं प्रभु

की उपासना करके सिद्धि प्राप्त की थी। इस सम्बन्ध में स्वयं श्रीब्रह्माजी ने व्यासजी को जो उपाख्यान कहा था वही महर्षि भूगु ने राजा सोमकान्त के प्रति कहा था। उस परम हर्ष को देने वाली गाथा को मैं तुम्हारे प्रति कहता हूँ। तुम ध्यान से सुनो—

एक बार जब ब्रह्माजी सृष्टि-रचना में लगे थे, तब भगवान् विष्णु के कानों से मधु-कैटभ नामक दो दैत्य उत्पन्न हो गए। वे भूख से व्याकुल होकर इधर-उधर देखने लगे तो ब्रह्माजी पर ढृष्टि पड़ी। फिर क्या था, वे उन्हें ही खाद्य समझकर उनकी ओर दौड़े। ब्रह्माजी उनकी चेष्टा देखकर भयभीत हो गए। उन्होंने व्याकुल होकर योगमाया से निवेदन किया कि ‘भगवान् विष्णु को जगा दो देवि! अन्यथा यह असुर मुझे खा डालेंगे।’ योगमाया की प्रेरणा से भगवान् की निद्रा दूर हुई।

६ ब्रह्माजी पर संकट देखकर भगवान् ने अपने पाञ्चजन्य की ध्वनि की, जिसे सुनकर त्रैलोक्य काँप उठा। उस ध्वनि को सुनकर मधु-कैटभ सचेत हुए और ब्रह्माजी को भूल कर भगवान् विष्णु पर टूट पड़े। अब तो दोनों में घोर युद्ध होने लगा। पाँच हजार वर्ष तक घोर युद्ध हुआ, किन्तु असुरों पर विजय न मिल सकी।

जब भगवान् का वश न चला तो उन्होंने संगीतज्ञ गन्थर्व का रूप धारण कर लिया और एक वन में जाकर वीणा पर श्रुति स्वर में गीत गाने लगे। उनके गीत से तीनों लोक मुग्ध हो गए। वह स्वर कैलाशपति भगवान् शंकर के भी कानों में पड़ गया। उन्होंने निकुम्भ और पुष्पदंत को आदेश दिया कि उस संगीतज्ञ को लिवा लाओ।

शिवगण उन्हें लिवा लाये। गन्थर्व वेशधारी विष्णु ने उन्हें प्रणाम कर, उनके आदेश पर वीणा की तान छेड़ी। उसे सुनकर भगवान् वृषभध्वज, माता पार्वती जी, गणेश जी और कार्तिकेय तथा अन्यान्य सभी देवता मुग्ध हो गए। शंकर ने प्रसन्न होकर कहा—‘वर माँगो।’

विष्णु बोले—‘वर देना चाहते हैं तो मधु-कैटभ नामक असुरों का नाश हो जाय, यह वर दीजिए।’

गणेश हँसे, बोले—‘तो तुम विष्णु हो ? इस वेश में यहाँ आने की क्या आवश्यकता हुई ? क्या असुरों के भय से छद्मवेश बनाये धूम रहे हो ?’

विष्णु ने कहा—‘आपको प्रसन्न करने के लिए ही यह सब करना पड़ा है आशुनोष ! अब आप शीघ्र ही वह उपाय कीजिए, जिससे असुरों का नाश हो सके।’

“गणेशं पूजयित्वैव ब्रज युद्धाय केशव ।

स च तौ माययाऽऽमोह्य वशतां प्रापयिष्यति ॥”

शिवजी ने प्रसन्न-मुद्रा में कहा—‘रमानाथ ! यदि असुरों पर विजय प्राप्त करनी है तो गणेश जी को प्रसन्न करो । वे ही असुरों को अपनी माया में मोहित करके आपके वश में कर सकते हैं।’

विष्णु बोले—‘उन्हें प्रसन्न करने की विधि बताइए पार्वतीनाथ ! बिना विधि के पूजा सफल नहीं हो पाती।’

## गणेशजी के परदान से मधु-कैटभ का वध

शिवजी ने उन्हें षोडशोपचार युक्त गणपति-पूजन की विधि बताई । क्षुपरान्त भगवान् विष्णु ने गणेश जी की सौ दिव्य वर्षों तक उपासना की । उनके घोर तप से प्रसन्न हुए गजबदन प्रकट हो गए । उन्होंने कहा—‘मैं तुम्हारे तप से प्रसन्न हूँ । बोलो, क्या चाहते हो ?’

विष्णु बोले—‘मधु-कैटभ नामक असुर बहुत प्रबल हो गए हैं । मेरे वज्र में नहीं आ रहे हैं, अतएव पार्वतीनन्दन उनके वध का उपाय कीजिए।’

श्रीगणेश जी ने कहा—‘बैकुण्ठनाथ ! यदि आपने पहिले ही मेरा पूजन किया होता तो अब तक असुर परास्त भी हो गए होते।’

विष्णु बोले—‘गणेश्वर! मुझे आपका प्रभाव विदित नहीं था । अब आप वही कीजिए, जिससे मैं उन असुरों का वध करने में सफल हो सकूँ । हे नाथ ! इसके साथ ही मुझे अपनी अनन्य एवं दुर्लभ भक्ति भी प्रदान करने की कृपा कीजिए हे विष्णहरण ।’

भगवान् विष्णु की प्रार्थना सुनकर गणेश्वर ने कहा—‘यही होगा रमानाथ ! आपके हाथ से वे दोनों असुर शीघ्र ही मारे जायेंगे । इससे चतुरानन का भय भी दूर हो जायेगा और आपको महान् कीर्ति की भी प्राप्ति होगी । हे विष्णो ! अब आपके कार्य में कोई विष्ण उपस्थित नहीं होगा ।’

यह वर देकर भगवान् गणेश्वर अन्तर्धान हो गए और भगवान् त्रिलोकीनाथ वहाँ से लौटकर अपने स्थान पर पहुँचे, जहाँ उन्होंने दोनों असुरों को युद्ध के लिए समुद्यत देखा । त्रिलोकीनाथ को वहाँ आये देखकर उनकी ओर झपटते हुए बोले—‘तुम बड़े डरपोक हो जी ! जो रणक्षेत्र छोड़कर ही भाग गए ।’

विष्णु हँसे और उन्होंने युद्ध करके मधु-कैटभ का संहार कर दिया । जहाँ उन्होंने गणेश्वर की आराधना की थी, वह स्थान सिद्ध क्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध हो गया ।



#### ४. चतुर्थ अध्याय

## राजा भीम का उपाख्यान कथन

सूतजी बोले—हे शौनक ! भृगु जी ने सोमकान्त से पुनः कहा—‘हे महाराज ! अब श्रीगणेश्वर का अन्य उपाख्यान तुम्हारे प्रति कहता हूँ । विदर्भ देश की घटना है—उसकी राजधानी कौण्डन्यपुर थी । वहाँ भीम

नामक एक प्रसिद्ध राजा राज्य करता था। उसकी पतिव्रता पत्नी का नाम चान्हासिनी था। उनका दाम्पत्य जीवन सुखपूर्वक व्यतीत हो रहा था, किन्तु बड़ी आयु होने पर भी सन्तान न होने का दुःख उन्हें पीड़ित करता था।

तब राजा ने सोचा कि इसके लिए कोई उपाय करना चाहिए। ऐसा निश्चय कर उसने अपना राज्य अपने विश्वासपात्र अमात्य को सौंप दिया और उससे कहा—‘जब तक मैं न लौटूँ तब तक सावधानी पूर्वक प्रजा-पालन और देश की सीमा की रक्षा करते रहना।’ अमात्य ने आदेश-पालन का वचन दिया तो राजा वहाँ से निश्चन्त होकर वन को चल दिया। वह राजा वन में भ्रमण करता हुआ विश्वामित्र जी के आश्रम में जा पहुँचा और महर्षि को प्रणाम कर बैठ गया। महर्षि ने देखकर पूछा—‘तुम कौन हो? यहाँ किस प्रयोजन से आये हो? अपना पूर्ण परिचय दो।’

राजा बोला—‘प्रभो! मैं कौण्डन्यपुर में रहता हुआ विदर्भ देश पर शासन करता था। मेरा नाम भीम है। मेरी वृद्धावस्था हो गई तो भी कोई मन्त्रानन्दन नहीं हुई इसीलिए आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। मैं नहीं जानता कि मुझ जैसे कर्तव्यनिष्ठ एवं धर्मज्ञ व्यक्ति को भी इस दुर्भाग्य की प्राप्ति क्यों हुई है?’

महर्षि ने कहा—‘राजन्! तुमने पूर्वजन्म में श्रीगणेश्वर का निरादर किया। उसी के फलस्वरूप तुम इस जन्म में सन्तानहीन रहे हो। यदि उनको प्रसन्न कर लो तो तुम्हें अब भी सन्तान की प्राप्ति हो सकती है।’

राजा ने जिज्ञासा की—‘महामुने! मुझे मेरे पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुनाने की कृपा कीजिए कि मेरे द्वारा भगवान् गणेश्वर का निरादर कैसे हो गया था?’

विश्वामित्र बोले—‘महाराज! तुम्हारे कुल में बहुत पहले भीम नामक

एक अन्य प्रतापी पुरुष हुआ था। उसकी पत्नी अत्यन्त सुन्दर और पतिव्रता थी। उससे एक पुत्र की प्राप्ति हुई, जो गूँगा, बहिरा और विकलांग था। उसके शरीर से दुर्गम्भ आती थी। माता-पिता ने उसका नाम दक्ष रखा। अनेक प्रयत्न करने पर भी वह बालक मूक्ता और बधिरता के दोष से मुक्त न हो सका।'

'हे राजन्! किसी ने राजा से कहा कि यदि बालक अपनी माता के साथ तीर्थाटन करे तो सम्भव है कि बालक का रोग दूर हो जाये। उसके परामर्श पर राजा के आदेश से रानी अपने पुत्र को लेकर तीर्थयात्रा को चल पड़ी। मार्ग में चोरों ने उसे लूट लिया, इसलिए उसके पास जीवन-यापन के लिए भी धन नहीं रहा।

तब उसने एक शिव-मन्दिर में शरण ली और बालक को वहीं छोड़कर भिक्षा के लिए गाँव में चली गई। तभी उस मन्दिर में एक धर्मज्ञ ब्राह्मण आया। उसके शरीर का स्पर्श करके प्रवाहित होने वाली वायु के स्पर्श से बालक का शरीर रोगमुक्त हो गया।

रानी लौटकर शिवालय में आई तो अपने पुत्र को सर्वाङ्ग सुन्दर और रोगमुक्त देखकर बहुत प्रसन्न हुई। उसने ब्राह्मण देवता का पता लगाया तो ज्ञात हुआ कि वह गणेश जी का उपासक था। उसने रानी को गणेश जी की उपासना का उपदेश दिया।

अब माता और पुत्र दोनों ने भगवान् गणेश्वर की उपासना की जिससे प्रसन्न होकर गणेश जी ने स्वप्न में कहा कि तुम मेरे परम भक्त महर्षि मुद्गल के पास जाओ, उनसे तुम्हें समस्त अभीष्टों की प्राप्ति हो सकती है।

महर्षि भृगु ने कहा—'हे सोमकान्त! विश्वामित्र जी ने भीम को आगे का वृत्तान्त सुनाते हुए कहा कि वे दोनों मुद्गल आश्रम की खोज में बहुत समय तक अरण्यों में भटकते रहे, तब एक दिन बड़ी कठिनाई से उन्हें

वह आश्रम मिला । वहाँ आकर उन्होंने अपना सब वृत्तान्त सुनाया तो महर्षि ने श्रीगणेश्वर के एकाक्षरी मन्त्र 'ग' के अनुष्ठान का उपदेश दिया ।'

राजा भीम ने जिज्ञासा की—‘महामुने ! आपके मुख से यह चरित्र सुनकर मुझे आश्चर्य हो रहा है । एक ब्राह्मण के शरीर के स्पर्श से बहने वाली वायु के स्पर्श मात्र से वह बालक रोग रहित और सुन्दर कैसे हो गया ? इसका समाधान करने की कृपा कीजिए ।’

विश्वामित्र बोले—‘राजन् ! प्रभु की इच्छा से जो कुछ भी हो जाय, वही सम्भव है, उसमें आश्चर्य ही कैसा ? भगवान् गजानन चाहें तो किसी भी निमित्त से अभीष्ट प्रदान कर सकते हैं । देखो, एक समय की बात है—सिन्धु देश की पल्ली नामक ग्राम में एक धनिक वैश्य रहता था, उसका नाम कल्याण था । एक दिन वह वणिक-पुत्र अपने मित्रों के साथ बन में गया । वहाँ एक ऐसी शिला देखी जिस पर कोई मूर्ति-सी अङ्कित थी । उन्होंने उसे गणेश्वर नाम देकर पूजन आरम्भ किया और सबने मिलकर वहाँ एक मण्डप बनाकर उत्सव मनाने की आयोजना की ।

उस दिन से अपने सब मित्रों के साथ वह वणिक-पुत्र रात-दिन वहीं रहकर गणेश जी की उपासना करने लगा । जब वे घर नहीं पहुँचे तो माता-पिता को चिन्ता हुई और पता लगाने आये कि वे कहाँ हैं और क्या करते हैं ?

सब बालकों को उपासना आदि में लगे देखकर उनके माता-पिता आदि ने कल्याण से कहा कि तुम्हारे पुत्र ने हमारे बालकों को भी पागल बना दिया है, जो अरण्य में पड़ी हुई शिला का पूजन आराधना कर रहे हैं । इसलिए तुम अपने पुत्र को रोको अन्यथा हमें उसके साथ कठोरता का व्यवहार करना पड़ेगा ।

यह सुनकर कल्याण ने उस मण्डप को गिरा दिया और अपने पुत्र

को मारने लगा। उसने उस गणेश-शिला को उठाकर दूर फेंका और समस्त बालकों को वहाँ से भगा दिया।

## श्रीबल्लाल विनायक की स्थापना का घर्णन

हे राजन् ! इससे वणिक-पुत्र बल्लाल को बड़ा मानसिक कष्ट पहुँचा। उसने पिता से हाथ जोड़कर निवेदन किया कि ‘पिताजी ! आप मुझे कितना भी भारी दण्ड दे दीजिए, किन्तु उन सर्वात्मा भगवान् गणाध्यक्ष का निरादर मत कीजिए। वे प्रभु समस्त कल्याणों के देने वाले हैं। अपने भक्तों के सभी विज्ञों का भी हरण करते हैं। उनके समान अन्य कोई बड़ा देव नहीं है।’

वैश्य ने क्रोधावेश में कहा—‘मूर्ख ! इस पत्थर को सर्वात्मा कहता है ? देखूँगा तेरा गणाध्यक्ष तेरे विज्ञों को किस प्रकार दूर करता है और तुझे बन्धन से कैसे छुड़ाता है ?’

कल्याण ने अपने पुत्र को एक पेड़ से दृढ़तापूर्वक बाँध दिया और बोला—‘अब भी अपनी भूल स्वीकार कर और गणेश की भक्ति छोड़कर अपने कार्य में लग जा।’ किन्तु पुत्र ने पिता की बात स्वीकार नहीं की तो वह उसे गाली देता चला गया।

इस बालक को अपने पिता की निष्ठुरता पर क्रोध आ गया और उसने उसे शाप दे डाला—‘तुमने मुझे इस निर्जन वन में अकेला ही निर्दयतापूर्वक बाँधकर छोड़ दिया है। इसके फलस्वरूप तुम बहरे, गूँगे, अन्धे और विकलांग होओगे।’

बहुत समय बीत गया। वृक्ष से बँधा रहने के कारण बालक थक गया और रस्सी के बन्धन उसके कोमल अङ्गों में गड़ गये। इससे अत्यन्त पीड़ित होकर वह भगवान् गजानन को पुकारने लगा और अन्त में उनकी ओर से भी निराश हो गया तो उसने आत्मघात करने का निश्चय किया।

वह वृक्ष से ही सिर मारने लगा, उससे मस्तक में क्षत हो गये । तब वह बालक पीड़ा और निराशा के कारण रोता हुआ बोला—‘विघ्नेश ! आपके भक्त पर ऐसा महान् संकट है और आप सुनते नहीं । पता नहीं, आप कहीं हैं भी या नहीं ? यदि हैं तो आते क्यों नहीं ?’

नभी उसने देखा—एक ब्राह्मण आ रहा है । उसने तुरन्त ही बालक के बन्धन छोले और मिर पर हाथ फेरते हुए कहा—‘वत्स ! तुम्हारी पुकार मुन्नते ही तो वहाँ आ गया हूँ । तुमने पिता को जो शाप दिया है, वह सत्य होगा और यह स्थान तुम्हारे नाम पर ‘बल्लाल विनायक’ के नाम से प्रमिद्ध हो जायेगा ।

इधर कल्याण का शरीर उसी समय से रोगग्रस्त हो गया, उससे दुर्घट्य आने लगी । वह बहरा, गूँगा और विकलांग हो गया । उसकी दशा देखकर पर्ना को बहुत दुख हुआ । वह पुत्र को देखने के लिए अरण्य में गई तो वहाँ उसे गणेश्वर के पूजन में लगा देखा । इससे उसके मन में बड़ी प्रसन्नता हुई । उसने पुत्र से कहा—‘पुत्र ! यह तो तू बड़ा मंगल कार्य कर रहा है । परन्तु, तुम्हारे पिता की दशा बहुत दारुण हो गई है, उन्हें भी चलकर देखना चाहिए । वत्स ! माता-पिता की आज्ञा मानना भी पुत्र का परम कर्तव्य है ।’

? बल्लाल ने उसी प्रकार शान्तिपूर्वक बैठे रहकर कहा—‘जननि ! मांसारिक माता-पिता तो अनित्य हैं । यथार्थ माता-पिता तो भगवान् गणेश्वर ही हैं, जिनकी मैंने शरण ले ली है । इन्हीं भगवान् का निरादर करने के कारण पिताजी को ऐसी दशा प्राप्त हुई है । अब उनकी सेवा करना तुम्हारा भी कर्तव्य है, क्योंकि पत्नी के लिए पति की सेवा ही मर्वोपरि है ।’

माता ने कहा—‘पुत्र ! अपने जन्मदाता पिता को शाप से मुक्त कर दो । मैं तुमसे विनय करती हूँ ।’ यह सुनकर बल्लाल ने कहा—‘जननि ! मैं तो अब कुछ भी नहीं कर सकता । अगले जन्म में तुम एक राजा की

महारानी बनोगी । किन्तु तुम्हारा पुत्र गूँगा, बहरा, विकलांग और दुर्गन्धि युक्त होगा । उसके कारण तुम्हारा पति उस पुत्र के साथ तुम्हें भी घर से निकाल देगा ।

फिर एक शिवालय में एक गणपति भक्त ब्राह्मण के स्पर्श से तुम्हारे उस दक्ष नामक पुत्र का शरीर नीरोग और सुन्दर हो जायेगा ।' हे राजन् ! यह समस्त घटना-चक्र उसी वाणी के अनुसार घटित हुआ था ।

विश्वामित्र बोले—‘हे राजन् ! अब आगे का वृत्तान्त सुनो । कौण्डन्यपुर नगर के निकट ही एक महावन था, जिसमें भगवान् गणाध्यक्ष का एक प्राचीन मन्दिर विद्यमान था । दक्ष ने उस मन्दिर में जाकर गणेश्वर के एकाक्षरी मन्त्र का जप आरम्भ किया । इसी मध्य उसने अपने को हाथी पर सवार देखा । वह स्वज्ञ उसने माता को सुनाया तो वह बोली—‘पुत्र ! स्वज्ञ तो बहुत ही सुन्दर है । हाथी के दर्शन का अर्थ हुआ भगवान् गजानन का दर्शन और हाथी की सवारी का अर्थ हुआ राज्यपद की प्राप्ति ।’

## काल की गति विचित्र होती है

मुनीश्वर आगे बोले—‘राजन् ! काल की गति बड़ी विचित्र है । वह अनुकूल चलता है तो समस्त सौभाग्यों की प्राप्ति कराता है और प्रतिकूल चलता है तो नष्ट कर देता है, देखो, कौण्डन्यपुर में उस समय चन्द्रसेन नामक राजा राज्य करता था, उसकी मृत्यु अकस्मात् हो गई । नगर में सर्वत्र शोक छा गया, राजा की सदाचारिणी पत्नी सुलभा पति के वियोग में मूर्च्छित हो गई ।

तभी एक वेदज्ञ ब्राह्मण ने आकर कहा—‘जिसकी जितनी आयु होती है वह उतना ही जीवित रहता है । इसलिए शोक व्यर्थ है । फिर, जो मर गया, उसका संस्कार तो करना ही चाहिए अन्यथा सद्गति कैसे होगी ? जो केवल शोक का दिखावा करता है, वह अवश्य स्वार्थी है, इसलिए राजा का संस्कार करना ही उसके प्रति सच्ची प्रीति प्रदर्शित करना होगा ।’

राजा के कोई पुत्र या परिवारीजन नहीं था, इसलिए प्रधान अमात्य ने उसका मृतक संस्कार किया और फिर सब अमात्य बैठकर विचार करने लगे कि किसे राजा बनाया जाय? तभी महर्षि मुदगाल बहाँ आ गये और अमात्यों के पूछने पर महर्षि ने कहा, 'गज अपनी सूँड़ जिसके कण्ठ में माला पहिनाए, उसी को राजा बनाना चाहिए। इसके लिए आप लोग एक उत्सव का आयोजन करके राजा का चयन कर लो।'

महर्षि की आज्ञानुसार शुभ दिन देखकर उत्सव का आयोजन किया गया, जिसमें सहस्रों व्यक्ति उपस्थित हुए। दक्ष भी उसमें दर्शक के रूप में सम्मिलित हुआ। रानी ने पुष्कर नामक गजेन्द्र की सूँड़ में एक रत्नमाला डाली और प्रार्थना की कि 'हे गजराज! इस माला को किसी ऐसे योग्य व्यक्ति के गले में डाल दो जो धर्मपूर्वक राज्य शासन चला सके।'

हाथी उस जनसमूह के मध्य में इधर-उधर सूँड़ हिलाता हुआ धीरे-धीरे चल पड़ा। वह कभी-कभी रुक कर किसी विशिष्ट व्यक्ति को सूँधने लगता तो वह व्यक्ति समझता कि यह मेरे ही गले में माला डालेगा। अनेकों उत्सुक व्यक्ति हाथी के पास इसी आशा में आने लगे। किन्तु हाथी सबकी ओर देखता और बहुतों को सूँधता हुआ अन्त में दक्ष के पास जा पहुँचा और उसे सूँधकर, देखकर, कुछ ठहर कर अन्त में उसने उसी के गले में वह रत्नमाला डाल दी।

दक्ष राजा हो गया। हाथी ने उसे अपनी सूँड़ से उठाकर ऊपर बैठा दिया। सर्वत्र हर्षध्वनि और जयघोष होने लगा। वह हाथी पर चढ़ाकर ही राजभवन में लाया गया। वेदज्ञ ब्राह्मणों ने उसका विधिपूर्वक अभिषेक किया। उस समय दुन्दुभि बज उठी, राजा दक्ष पर पुष्पों की वर्षा होने लगी। राजा ने सभी को यथा पद विभिन्न प्रकार के उपहार और ब्राह्मणों को गवादि के दान किए।

हे महाराज! दक्ष का विवाह राजा वीरसेन की पुत्री से हुआ। फिर उसके वृहद्भानु नामक एक पुत्र हुआ जिसने सुखपूर्वक उस राज्य को

भोगा । बृहदभानु का पुत्र खड्गधर हुआ । खड्गधर का पुत्र सुलभ, उसका पुत्र पद्माकर, उसका पुत्र वपुदीप्त और उसका पुत्र चित्रसेन हुआ । हे राजन् ! उस चित्रसेन से पुत्र तुम हो ।'

ब्रह्माजी ने कहा—‘हे व्यास ! विश्वामित्र जी के मुख से अपना परम्परागत वंश-परिचय सुनकर राजा भीम को बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने निवेदन किया—‘प्रभो ! मुझ पर भी भगवान् गणाध्यक्ष का अनुग्रह हो सके, वैसी कृपा कीजिए ।’

उसकी प्रार्थना सुनकर विश्वामित्र ने कहा—‘हे राजन् ! तुम राजा दक्ष द्वारा निर्माण कराये गये गणेश मन्दिर में रहकर गणाध्यक्ष का अनुष्ठान करो तो तुम्हारे सब अभीष्ट पूर्ण हो जायेंगे ।’ यह सुनकर राजा उन्हें प्रणाम करके अपने वंश-परम्परागत से उपासकीय गणेश्वर मन्दिर में जाकर उपासना करने लगा और अनुष्ठान पूर्ण होने पर उसके रुक्मांगद नामक पुत्र की प्राप्ति हुई । कालान्तर में पिता की आज्ञा से रुक्मांगद अपने पैतृक राज्यपद पर आसीन हुआ ।

यह कहकर ब्रह्माजी चुप हो गये तो व्यासजी ने उनसे निवेदन किया, ब्रह्मन् ! फिर रुक्मांगद भी गणेश भक्त हुआ या नहीं ? राजा रुक्मांगद बड़ा धार्मिक और सत्यवादी हुआ था । उसे भी एक बार बड़े संकट की प्राप्ति हुई थी, जिसकी निवृत्ति गणेश-कृपा से ही हुई ।

## रुक्मांगद की संकट से निवृत्ति

व्यासजी बोले—‘प्रभो ! उसे किस प्रकार से संकट की प्राप्ति और निवृत्ति हुई, सो कहने की कृपा कीजिए उसके विषय में जानने की मुझे बड़ी अभिलाषा हैं ।’ यह सुनकर चतुरानन ने कहना आरम्भ किया—‘हे व्यासजी ! राजा रुक्मांगद सुखपूर्वक राज्य करता था ।

एक दिन वह शिकार के लिए वन में गया और शिकार न मिलने

पर इधर-उधर भटकने लगा। तभी उसे वाचवनवि ऋषि का आश्रम दिखाई दिया। वह उस आश्रम में गया तो वहाँ ऋषि और उनकी पत्नी मुकुन्दा दिखाई दिए। उसने दोनों को प्रणाम किया और ऋषि की आज्ञा से कुटी के एक कक्ष में विश्राम करने लगे।

इसी बीच ऋषि स्नानार्थ सरोवर पर चले गये, तभी ऋषि-पत्नी ने राजा के पास जाकर कहा कि 'तुम अति सुन्दर हो, मैं तुमपर मोहित हो गई हूँ, मुझे प्रसन्न करो।' राजा बोला—'आप पूज्य महर्षि की पत्नी हैं और मेरे लिए माता के समान हैं, अतः मैं ऐसा दुष्कर्म नहीं कर सकता।' यह सुनकर मुकुन्दा ने उसे शाप दे दिया कि तूने मेरा तिरस्कार किया है, इसलिए कोढ़ी हो जाएगा। राजा उसी समय कोढ़ी हो गया।

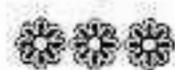
वह बड़ा दुःखी हुआ और सोचने लगा—'मैंने धर्म का पालन किया तो भी मेरी ऐसी दशा हुई। अब ऐसे घृणित जीवन से कोई लाभ नहीं।' ऐसा निश्चय कर वह एक वटवृक्ष के नीचे बैठकर प्रायोपवेशन करने लगा।

ब्रह्माजी बोले—'हे द्वौपायन ! उसी अवसर पर नारद जी उस मार्ग से निकल रहे थे। उन्होंने राजा को आमरण अनशन करते देखा तो उसका कारण पूछ बैठे। राजा ने उन्हें सब बात बताई तो उसे निर्दोष जानकर दया आ गई और बोले कि 'विदर्भ राज्य में 'चिन्तामणि गणेश' नामक एक प्रसिद्ध देवालय है। वहीं गणेश-प्रतिमा के समक्ष ही गणेश-कुण्ड है। उसमें जो कोई स्नान करता है वह रोग-मुक्त हो जाता है। इसलिए तुम भी ऐसा ही करो।'

राजा उनके उपदेशानुसार चिन्तामणि नगर पहुँचा और उसने गणेशजी के दर्शन कर कुण्ड में स्नान किया। इससे वह तुरन्त ही नीरोग हो गया। तब उसने वहाँ गणेश्वर का भक्तिभाव पूर्वक षोडशोपचार से पूजन किया और फिर ब्राह्मणों को भोजन कराकर दान-दक्षिणा दी। तभी उनके पास गणेश-दूत आकर बोले—राजन् ! भगवान् गणेश्वर की आज्ञा

से हम यहाँ आये हैं। तुम हमारे साथ उस विमान पर चढ़कर प्रभु की सेवा में चलो।'

राजा बोला—'प्रभु पार्षदो ! मेरे माता-पिता अभी जीवित हैं, मैं उन्हें छोड़कर आपके साथ कैसे चलूँ ? तो दूत बोले—'तुम पुनः इस कुण्ड में स्नान और गणपति-पूजन कर उनका पुण्य अपने माता-पिता के अर्पण करो तो उन्हें भी अपने साथ ले सकते हो।' राजा के दूतों के कहे अनुसार ही पुनः स्नान, पूजनादि किया और अपने माता-पिता को साथ लेकर गणपति धाम को चला गया।'



१

## ५. पञ्चम अध्याय

### मुकुन्दा की दुष्टता के कारण गृत्समद का शाप

व्यासजी बोले—लोकपितामह ! आपने राजा रुक्मांगद का बड़ा सुन्दर चरित्र सुनाया। किन्तु ऋषि-पत्नी मुकुन्दा के विषय में कुछ नहीं कहा। उसकी दुष्टता का पता ऋषि को लगा या नहीं ? और लगा तो फिर क्या हुआ ?

ब्रह्माजी बोले—हे सत्यवतीनन्दन ! मुकुन्दा की दुष्टता का ऋषि को तो पता नहीं लगा, लेकिन सहस्राक्ष इन्द्र ने यह बात जान ली। उसने राजा रुक्मांगद का रूप बनाया और ऋषि-पत्नी के पास जा पहुँचा। मुकुन्दा उसे देखकर हर्ष-विभोर हो गई। उनके मिलन के फलस्वरूप मुकुन्दा के गर्भ से एक तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। ऋषि ने हर्षित मन से उसके समस्त संस्कार कराये और उसे समस्त वेद-वेदांगादि का ज्ञान कराया। उन्होंने उस बालक का नाम गृत्समद रखा।

एक बार मगध देश के राजा के यहाँ शाद्व था। उसमें अनेक

ऋषि-महर्षि आमन्त्रित थे । गृत्समद भी उस अवसर पर निमन्त्रित था । वहाँ ऋषियों और विद्वानों के समाज में शास्त्र-चर्चा चलने लगी तो गृत्समद बीच-बीच में बोलकर अपनी विद्वत्ता दिखाने लगा ।

इसपर एक ऋषि को क्रोध आ गया और उन्होंने उससे कहा—‘रुक्मांगद ! निरर्थक बड़प्पन मत बधारो । वस्तुतः तुम ऋषि-पुत्र नहीं, वरन् क्षत्रिय-पुत्र हो । तुम्हें तो हमारे साथ बैठने का भी अधिकार नहीं ।’

फिर क्या था, गृत्समद तुरन्त उठकर अपनी माता के पास गया और पूछने लगा—‘माता ! मैं किसका पुत्र हूँ ?’ मुकुन्दा ने कहा—‘पुत्र अपने पिता का ही होता है, इसमें शंका कैसी ?’

किन्तु इस उत्तर से वह सन्तुष्ट न हुआ और उग्र रूप धारण कर बोलो—‘कुलटे ! तेरा पाप खुल गया है, मुझे सत्य बता, अन्यथा ठीक नहीं होगा ।’ मुकुन्दा उसके उग्र रूप से भयभीत हो गई और उसने सत्य बात बता दी कि वह रुक्मांगद का पुत्र है । इसपर गृत्समद ने अत्यन्त क्रोध-पूर्वक उसे शाप देते हुए कहा—‘ब्राह्मण-वंश को लज्जित करने वाली पिशाची ! तू कट्टकी होगी ।’

## गृत्समद को अपनी माता का शाप

पुत्र के मुख से अपने लिए शाप सुनकर मुकुन्दा को भी क्रोध आ गया और काँपती हुई वाणी से बोली—‘अरे मूढ़ ! अपनी जननी को शाप देता है ! जा, दुष्ट ! तुझे तेरे इस अपराध का भयानक दण्ड मिलेगा । तुझे अत्यन्त भयंकर महाबली पुत्र की प्राप्ति होगी, जिसके घोर अत्याचारों से समस्त संसार क्षुब्ध हो जायेगा ।’

गृत्समद जानते थे कि माता का शाप निष्फल नहीं होगा, अतः वे घर से निकलकर पुष्पक वन में गये । मार्ग में उन्होंने आकाशवाणी सुनी कि ‘तुम राजा रुक्मांगद के नहीं, इन्द्र के पुत्र हो । वे पुष्पक वन स्थित एक

वयोवृद्ध एवं वीतराग महर्षि के आश्रम में पहुँचे, जिन्होंने उन्हें गणेश-आराधना का उपदेश दिया ।'

अब गृत्समद ने घोर तप आरम्भ किया । वरदेश्वर गणनाथ का ध्यान करते हुए वे एक पाँव के अँगूठे के बल पर खड़े रहे । जिह्वा पर गणेश्वर का ही नाम रहता । इस प्रकार घोर तपस्या करते हुए उन्हें एक हजार वर्ष व्यतीत हो गये, किन्तु उपासना सफल नहीं हुई । तब उन्होंने और भी कठोर व्रत लिया । केवल एक जीर्ण पत्ता पाते हुए ही पन्द्रह हजार वर्ष व्यतीत कर दिए । अन्त में भक्तवत्सल भगवान् गजानन को आना ही पड़ा । हे व्यास ! उस समय उनका तेज हजारों सूर्यों के समान था । मस्तक पर चन्द्रमा और कण्ठ में विशाल कमलमाल बड़े-बड़े तालपत्र के समान कानों में कुण्डल सुशोभित थे । सर्पों का यज्ञोपवीत धारण किए हुए वे दशभुज गणेश सिंह पर सवार थे । उनके साथ उनकी दोनों पल्लियाँ सिद्धि-बुद्धि भी थीं ।

गृत्समद उनके रूप को देखते ही रह गए । उस समय उन्हें अपने शरीर का भी ध्यान नहीं था । किंकर्त्तव्यविमूढ़ के समान खड़े हुए एकटक उन्हें देखते रहे ।

गणेशजी ने भक्त की ऐसी विहूल अवस्था देखते हुए कहा—‘भक्तराज ! मैं तुमसे अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ । जो इच्छा हो वह माँगो, मैं उसे अवश्य पूर्ण करूँगा ।’

गृत्समद सावधान हुए । उन्होंने साष्टाङ्ग प्रणाम कर निवेदन किया—‘प्रभो ! यह मेरा सौभाग्य ही है कि मुझे आपके मंगलमय दर्शन प्राप्त हुए हैं । नाश ! यह पुष्पक वन अब आगे से ‘गणेशपुर’ कहा जाने लगे और आप स्वयं यहाँ निवास करके भक्तों की कामना पूर्ण करते रहें ।’

वरदराज ने ‘तथास्तु’ कहकर वर प्रदान किया और फिर बोले—‘भक्तवर ! तुम्हारे एक अत्यन्त बलशाली पुत्र की प्राप्ति होगी, जो

तीनों लोकों में ख्याति प्राप्त करेगा । उसे महाकाल भगवान् के अतिरिक्त अन्य कोई भी न जीत सकेगा । इस क्षेत्र का नाम युगानुसार होंगे—सतयुग में पुष्पकवन, त्रेता में मणिपुर, द्वापर में मानक और कलियुग में भद्रक । यहाँ जो कोई स्नान-दानादि करेगा, उसके समस्त अभीष्ट पूर्ण होंगे ।

ऐसा वर देकर वरदराज अन्तर्धान हो गये । गृत्समद ऋषि ने वहाँ एक मन्दिर बनाकर प्रथमेश्वर गणराज का श्री-विग्रह स्थापित कर पूजन किया । आगे चलकर गणेशजी के नाम पर उस स्थान का नाम भी ‘वरद’ हो गया ।

## त्रिपुरासुर ने गणेश की आराधना की

गृत्समद अब केवल भगवान् गजानन की उपासना में लगे रहने लगे । परन्तु एक दिन उन्होंने एक अत्यन्त तेजस्वी बालक को स्वयं प्रकट हुआ देखा तो आश्चर्यचकित हो गये । वह बालक उनसे नम्र वाणी में बोला—‘मैं आपकी छींक से उत्पन्न हुआ आपका पुत्र हूँ । जब तक मैं अपने पैरों पर खड़ा नहीं होता, तब तक आप मेरा पालन कीजिए । फिर तो मैं स्वयं ही पौरुष से सब देवताओं और तीनों लोकों को जीत लूँगा ।’

उसकी बात सुनकर गृत्समद कुछ करे, उन्हें माता के वचन याद आ गये । परन्तु करते भी क्या ? उन्होंने बालक से कहा—‘पुत्र ! तुम गणेशजी की उपासना करो ।’ यह कहकर उन्होंने उसे गणेशजी का मन्त्र देकर उपासना-विधि भी बतलाई ।

बालक वहाँ से चला गया । उसने एकान्त में वन में जाकर वरदराज की आराधना आरम्भ की । वह भी एक पाँव के अँगूठे से खड़ा रहकर तपस्या करता रहा । उसे भी पिता के समान निराहार रहकर घोर तप करते हुए पन्द्रह हजार वर्ष व्यतीत हो गए ।

भगवान् गणाधीश्वर प्रसन्न हो गए । उन्होंने एक भयानक शब्द के

साथ उसको दर्शन दिया । मुनिकुमार ने देखा कि वरदराज साक्षात् खड़े हैं तो वह उनके चरणों में गिर गया । गणेशजी ने हर्षपूर्वक कहा—‘उठो भक्त-श्रेष्ठ ! मैं तुमपर प्रसन्न हुआ हूँ । अपना इच्छित वर माँग लो मुझसे ।’

मुनिकुमार ने हाथ जोड़कर निवेदन किया—‘प्रभो ! मैं आपके असीम तेज से अत्यन्त विस्मित और भयभीत हूँ । कृपा कीजिए प्रभो ! मेरी इच्छा पूर्ण कर दीजिए नाथ ! मैं बालक हूँ स्तुति किस प्रकार की जाती है, इसका ज्ञान नहीं । यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे त्रैलोक्य-विजय का वर प्रदान कीजिए । देव, दानव, मनुष्य, राक्षस, गन्धर्व, किन्नर तथा सर्पदि सभी मेरे वश में हो जायें । इन्द्रादि सभी लोकपाल सदैव मेरी सेवा करें । इस जीवन में सभी सुखों को भोगकर अन्त में मोक्ष भी प्राप्त करूँ ।’

भगवान् गणपति बोले—‘वत्स ! तुम सदैव भय रहित और तीनों लोकों के विजेता होगे । मैं तुम्हें लोहे, चाँदी और सोने के तीन नगर प्रदान करता हूँ । इन्हें भगवान् शंकर के अतिरिक्त कोई भी नहीं तोड़ सकेगा । यह तीनों पुर शिवजी के एक ही बाण से टूट जायेंगे । इत तीनों पुरों के स्वामी होने के कारण तुम्हारा नाम त्रिपुर हो गया ।’

वर प्रदान कर गणेशजी अन्तर्हित हो गए । त्रिपुरासुर ने उनकी मूर्ति स्थापित की और उनका षोडशोपचार से पूजन किया । उसके पश्चात् वह त्रैलोक्य विजय के लिए चल पड़ा । धरती, स्वर्ग, पाताल सभी पर उसका अधिकार हो गया । देवताओं सहित इन्द्र हार गये । उसके भय से देव-समुदाय वन, पर्वत आदि की गुफाओं में छिपता फिरा । चतुर्भुज ब्रह्मा नाभि-कमल में प्रविष्ट हो गए । भगवान् विष्णु भी क्षीरसागर में जा छिपे ।

शौनकजी ! त्रिपुरासुर प्रचंड हो उठा । उसके दो पुत्र हुए जिनका नाम चण्ड और प्रचण्ड थे । उसने चण्ड को बैकुण्ठ को और प्रचण्ड को ब्रह्मलोक का अधिकारी बना दिया । त्रिपुरासुर को इतने से भी शान्ति नहीं मिली । उसकी अधिकार-लिप्सा इतनी बढ़ी कि कैलास पर जा पहुँचा ।

शिवजी को उसे प्राप्त वरदान और शक्ति का ज्ञान था। वे अविलम्ब उनके सामने पहुँचकर बोले—‘वत्स ! मैं तुमसे सन्तुष्ट हूँ। तुम जो चाहो सो माँग लो।’

त्रिपुरासुर बोले—‘भोले बाबा ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हो तो कैलास छोड़कर मन्दराचल पर चले जायें।’ शिवजी समझ गये कि कैलास छोड़े बिना काम नहीं चलेगा, इसलिए तुरन्त ही मन्दरगिरि को प्रस्थान कर गये। इस प्रकार संसारभर में असुर-साम्राज्य छा गया।

## <sup>10</sup> देवताओं द्वारा श्रीगणेश-पूजा का वर्णन

गिरि-कन्दराओं में छिपे हुए इन्द्र सहित सब देवता अत्यन्त दुःखित थे। उनकी समझ में नहीं आता था कि असुर पर विजय कैसे प्राप्त हो ? उसी अवसर पर देवर्षि नारद वहाँ आ पहुँचे। देवताओं ने मुनि का बड़ा स्वागत-सत्कार किया और विनयपूर्वक बोले—‘ऋषिराज ! इस दैत्य से किस प्रकार छुटकारा प्राप्त हो ? इसका कुछ उपाय निश्चित कीजिए।’

नारदजी बोले—‘देवगण ! भगवान् विनायक के वरदान से ही त्रिपुरासुर इतना प्रचण्ड हुआ है। यदि तुम उन्हीं भगवान् को प्रसन्न करो तो असुर का विनाश हो सकता है।’

यह कह कर नारद जी चले गये। देवताओं ने गणेश जी की आराधना आरम्भ की। उनकी मन्त्रमूर्ति का षोडशोपचार-पूजन किया जिससे प्रसन्न होकर वरदराज गणेश जी प्रकट हो गये। उनको सामने देखकर देवगण गदगद कण्ठ से प्रार्थना करने लगे—

“नमो नमस्ते परमार्थस्तुप नमो नमस्तेऽखिलकारणय ।  
नमो नमस्तेऽखिलकारकाय सर्वेन्द्रियाणामधिवासिनेऽपि ॥

नमो नमो भक्तमनोरथेश नमो नमो विश्वविधानदक्ष ।

नमो नमो दैत्यविनाशहेतो नमो नमः सङ्कटनाशकाय ॥”

‘हे परमार्थ-स्वरूप ! आपको नमस्कार है । हे अखिल विश्व के कारणरूप आपको नमस्कार है । हे सबके कर्ता प्रभो ! हे सभी इन्द्रियों में निवास करने वाले गजानन ! आपको नमस्कार है । हे नाथ ! आप भक्तों के मनोरथ पूर्ण करने वाले तथा विश्व के विधान में दक्ष हैं, आपको नमस्कार है । हे दैत्यों को विनष्ट करने में हेतु रूप, आपको नमस्कार है । हे सर्व सङ्कटों को नष्ट करने वाले वरदराज ! आपको नमस्कार है ।’

सूतजी बोले—‘हे शौनक ! देवताओं के इस प्रकार प्रार्थना करने पर श्रीगणेशजी ने प्रसन्न होकर कहा—‘देवताओ ! मैं तुम्हारी स्तुति से अत्यन्त प्रसन्न हूँ । तुम क्या चाहते हो ? जो माँगोगे वही दूँगा ।’

देवताओं ने हाथ जोड़कर निवेदन किया—‘वरदराज प्रभो ! इसमें सन्देह नहीं कि आप सब कुछ दे सकते हैं । परन्तु शङ्ख यह है कि आपके वर की प्रचण्डता को प्राप्त हुए त्रिपुरासुर का दमन अब किस प्रकार हो सकता है ? क्योंकि आप अपने ही वचन को मिथ्या कैसे करेंगे ?’

गणेश जी ने कहा—‘मैं तुम सब की रक्षा करूँगा । त्रिपुरासुर तुम्हारा कुछ भी न बिगाड़ सकेगा ।’

देवगण बोले—‘प्रभो ! हम उसी के भय से मारे-मारे फिर रहे हैं । हमारा राज्य छिन गया । यज्ञादि के न होने से आजीविका नष्ट हो गई । इस गिरि-कन्दरा में भूखे-प्यासे रहते हुए हम अत्यन्त क्षीणबल और हीनकार्य हो गए हैं । यहाँ भी हमें उस दुर्दान्त दैत्य का सदा भय लगा रहता है ।’ गणराज ने सान्त्वना दी—‘यह सब समय का प्रभाव है देवताओ ?’ जब तुम्हारा ऐश्वर्यशाली समय चला गया, तब यह संकटकाल भी चला ही जायेगा । देखो ! कालचक्र कभी रुकता नहीं, वह सदैव घूमता है ।

यद्यपि आज वह दैत्य दुर्दान्त हो रहा है, फिर भी उसका पतन भी अवश्यम्भावी है।'

देवताओं ने निवेदन किया—‘परन्तु, अब अपनी स्थिति से हम ऊब बैठे हैं प्रभो ! आपने उसे इतनी शक्ति प्रदान की है तो आप ही उसकी शक्ति का हरण भी कर सकते हैं। अतएव हम निराश्रितों को आश्रय प्रदान कीजिए प्रभो ! हमें इस विपत्ति से शीघ्र छुड़ाइए दीनबन्धो !’

यह कहकर देवगण उनके समक्ष दीन भाव से नत मस्तक हो गए। गणेशजी ने उनकी विपत्ति का अनुमान किया और बोले—‘देवगण ! मेरा पूजन करते रहो। भक्तिभाव से की गई मेरी उपासना कभी निष्फल नहीं होती।’

यह कहकर गणेशजी अन्तर्धान हो गए, देवता पुनः उनकी भक्तिपूर्वक उपासना करते रहे। उधर भगवान् गणेशजी स्वयं ब्राह्मण का वेश रखकर त्रिपुरासुर के पास पहुँचे। उसने एक तेजस्वी ब्राह्मण का आगमन देखकर अर्घ्य-पाद्यादि से उनका सत्कार किया और फिर बोला—‘भगवन् ! आप कौन हैं, मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?’

## त्रिपुरासुर से गणेश-प्रतिमा की याचना का वर्णन

विप्रवेशधारी गणेशजी ने कहा—‘दैत्यराज ! मेरा नाम कलाधर है। मुझे भगवान् शंकर द्वारा पूजित उस गणेश-प्रतिमा की अभिलाषा है, जो कैलास में विद्यमान है। उसे मुझे प्रदान कर दो।’

त्रिपुरासुर बोला—‘वह प्रतिमा अवश्य दूँगा।’ यह कहकर उन्होंने अपने अनुचरों को प्रतिमा लाने का आदेश दिया। किन्तु जब भगवान् शंकर कैलास छोड़कर मन्दराचल पर चले गये थे तब उस प्रतिमा को भी साथ ले गये थे। अनुचरों ने लौट कर यह बात निवेदन की।

त्रिपुरासुर ने वह प्रतिमा भगवान् शंकर से लाकर देने को कहा और ब्राह्मणरूपधारी गणपति को अनेक रत्नाभूषण, मृगचर्म, सुरभि, गौ,

घोड़ा, हाथी, रथ आदि प्रदान किया । दैत्यराज का आदेश पाकर भगवान् शंकर के पास दूत पहुँचे और उन्होंने उनसे गणेश-प्रतिमा देने को कहा ।

शिवजी बोले—‘वह प्रतिमा नहीं मिल सकती । अपने स्वामी से जाकर कह देना कि भविष्य में वह ऐसा साहस न करे ।’

दूत बोला—‘प्रतिमा तो आपको देनी ही होगी । मेरे स्वामी का आदेश न मानने की किसमें शक्ति है । अतएव, भलाई इसी में है कि प्रतिमा तुरन्त दे दो ।’

शिवजी कुपित हो गए, बोले—‘जाता है या नहीं ? अधिक बकवास करेगा तो अभी भस्म हो जायेगा ।’

शिवजी को क्रोधित देखकर दूत अपने प्राण लेकर भागा और उसने त्रिपुरासुर के पास जाकर सब बात बताई । दैत्यराज ने आदेश दिया—‘मन्दरगिरि पर आक्रमण करो और उस भङ्गड़ी को मार डालो ।’

फिर क्या था ! दैत्य की सेना ने एकत्र होकर कूच कर दिया, उधर देवताओं को पता चला तो वे भी एकत्रित होकर भगवान् शंकर की सहायतार्थ आ पहुँचे । इसके बाद घोर संग्राम छिड़ गया । देवसेना का संरक्षण भगवान् शंकर स्वयं कर रहे थे । परन्तु दैत्यों का बल बहुत बढ़ा हुआ था, इसीलिए शिवजी की संरक्षणता प्राप्त होने पर भी देवगण उनके समक्ष न ठहर सके, वरन् रणक्षेत्र छोड़कर इधर-उधर भाग निकले ।



## शिवजी द्वारा गणेश्वर की उपासना का वर्णन

त्रिपुरासुर अपनी विजय के गर्व में फूल गया । उसने सोचा कि ‘लगे हाथों इस भङ्गड़ी की स्त्री को भी क्यों न हथिया लिया जाय ?’ ऐसा

विचार करके वह कैलास की ओर बढ़ा । उसे ज्ञात था कि पार्वती जी उसी के अधिकार-क्षेत्र में आये हुए कैलास में रह रही हैं । इसलिए उन्हें पाना कठिन नहीं है ।

पार्वती जी ने सुना कि त्रिपुरासुर उन्हें लेने के लिए आ रहा है, तो वे काँप उठीं । उन्होंने अपने पिता हिमराज से अपनी कष्टकथा कही तो वे इन्हें एक गुफा में ले गये और वहाँ छिपकर रहने को कहा । जब पार्वती जी न मिलीं तो त्रिपुरासुर उनकी खोज करने लगा, जिससे हिमनन्दिनी तो न मिलीं, किन्तु भगवान् चिन्तामणि की शुभ प्रतिमा अवश्य प्राप्त हो गयी । उस दुर्लभ गणपति मूर्ति को लेकर अपने नगर की ओर चल दिया ।

मार्ग में त्रिपुरासुर ने देखा कि साथ-साथ अनेकों बन्दीजन श्रीगणपति का गुणगान करते चल रहे हैं । तभी सहसा वह मंगलमूर्ति उनके हाथ से छूटकर अदृश्य हो गई । मूर्ति के अन्तर्धान होते ही बन्दीजन भी अदृश्य हो गए थे ।

त्रिपुरासुर को बड़ी निराशा हुई । पाई हुई अमूल्य मूर्ति हाथ से निकल गई । यह उसके लिए शुभ शकुन नहीं था । इससे नितान्त खिन्न मन हुआ अपने नगर में लौट आया ।

उधर भगवान् शंकर भी असुर के अत्यन्त प्रबल सिद्ध होने के कारण चिन्तित थे । उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि उस दुर्दान्त दैत्य का दमन किस प्रकार किया जाय ? वे इस चिन्ता में निमग्न थे ही कि नारदजी आ पहुँचे । शिवजी ने उनका समयोचित सत्कार कर आसन दिया ।

तदन्तर वार्तालाप आरम्भ हुआ । देवाधिदेव महादेव ने उन्हें बताया—‘देवर्षे ! आप इस समय अच्छे आये हैं । मैं समझता हूँ कि अब वर्तमान समस्या का समाधान सहज ही हो जायेगा । देखो, त्रिपुरासुर कितना प्रबल हो गया है कि कोई भी महाबली उसके समक्ष टिक नहीं पाता । उसकी साम्राज्य-लिप्सा तो बढ़ी हुई थी ही, अब तो वह स्त्री, धन,

आजीविका के साधन तथा उपासना के माध्यमों को भी हथिया लेना चाहता है।'

शूलपाणि की बात पर नारदजी विचार कर ही रहे थे कि उन्होंने एक चौंका देने वाली बात कही—‘कौतुक मुनि ! बेचारे देवताओं की तो सामर्थ्य ही क्या, उस दैत्य ने तो मेरे भी सब अस्त्र निष्फल कर दिये । उसपर किसी भी व्यक्ति और अमोघ अस्त्र का प्रभाव नहीं हुआ ।’

नारदजी ने आश्चर्य से कहा—‘प्रभो ! आप यह क्या कह रहे हैं ? आपके अमोघ अस्त्र और निष्फल हो जायें, यह कभी सम्भव नहीं है । मैं तो समझता हूँ कि या तो आप अपनी शक्ति को भूल गये हैं अथवा यह सब आप की ही लीला है । लोक के कल्याणर्थ और विमोहित प्राणियों को सचेत करने के लिए ही आप यह सब कर रहे हैं ।’

शिवजी बोले—‘देवर्षि ! संसार में जहाँ जो कुछ भी हुआ, होता या हो रहा है, वह सभी कुछ लीला मात्र है, किन्तु उस लीला में भी कुछ विशेषता उपस्थित हो जाती है, तब उसका उपाय भी करना होता है । असुर की प्रबलता और देवताओं का अपकर्ष अवश्य ही विचारणीय है इस समय । यदि कोई उपाय आपकी समझ में आता हो तो बताने की कृपा करें ।’

देवर्षि ने कुछ विचार कर कहा—‘हे सर्वेश्वर ! हे सर्वज्ञ ! हे देवादिदेव महादेव ! आपसे कौन-सा उपाय छिपा है ? फिर भी आप पूछते हैं तो बताता हूँ । आपने युद्ध के आरम्भ में विघ्नेश्वर का पूजन नहीं किया, इसलिए पराजय का मुख देखना पड़ा । अब आप उनकी पूजा करके युद्ध में तत्पर हों तो आपकी विजय अवश्य होगी ।’

‘विघ्नेश्वर !’ शिवजी ने कहा—‘वह तो मेरा पुत्र है देवर्षे ! उसे तो कर्तव्यवश ही मेरी सहायता करनी चाहिए ।’

नारदजी ने मुस्कराहट के साथ कहा—‘पुत्र यदि रुठ जाय तो उसे भी

मनाना होता है। शूलपाणि ! फिर उस स्थिति में तो तपस्या और भी उलझ जाती है, जब शत्रु पुत्र से बल पाकर ही पिता पर आक्रमण करे ।'

शिवजी के हृदय को एक झटका लगा, तुरन्त ही पूछ बैठे—‘तो क्या गणेश ने ही असुर को इस आक्रमण के लिए प्रेरित किया है ? देवर्षि ! मैं तुम्हारी बात नहीं समझती । मुझे बताओ कि तुम कहना क्या चाहते हो ?’

नारद जी बोले—‘यह तथ्य सर्वविदित है महेश्वर ! आपके पुत्र गणेशजी से वरदान पाकर ही त्रिपुरासुर अजेय हो गया है । अब स्थिति यहाँ तक आ पहुँची है कि आप सर्वेश्वर को भी तुच्छ समझने लगा है । इस स्थिति से निपटने के लिए आपको भी अपने पुत्र का पूजन करना होगा ।’

शिवजी ने निश्चयात्मक स्वर में कहा—‘तो अवश्य करूँगा देवर्षे ! मैं अभी से उनका पूजन आरम्भ करता हूँ ।’

नारद जी चले गए । भगवान् शंकर ने दण्डकवन में जाकर कठोर तप आरम्भ किया । धीरे-धीरे सौ दिव्य वर्ष व्यतीत हो गए । तप करने में ही शिवजी को जँभाई आ गई और—

“ततस्तस्य मुखाम्भोजानिर्गतस्तु पुमान् महान् ।

पञ्चवक्त्रो दशभुजो ललाटेन्दुः शशिप्रभः ॥

मुण्डमालः सर्पभूषो मुकुटाङ्गदभूषणः ।

अग्न्यकर्णशशिनो भाभिस्तिरस्कुर्वन् दशायुधः ॥”

## शिवजी के समक्ष विनायक का प्राकट्य

तभी शिवजी के मुख से एक तेजोमय पुरुष का आविर्भाव हो गया । उनके पाँच मुख, दश भुजाएँ, ललाट पर चन्द्रमा था, उनकी देहकान्ति भी चन्द्रमा के ही समान थी । वे कण्ठ में मुण्डमाला, सर्पों के आभूषण तथा

मुकुट और बाजूबन्द धारण किए हुए थे। उनके तेज के समक्ष अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा भी तिरस्कृत हो रहे थे। उन्होंने अपनी भुजाओं में दश आयुध ले रखे थे।

शिवजी ने उन्हें देखा तो सोचने लगे—क्या यह मेरा ही दूसरा रूप है? कहीं यह त्रिपुरासुर की ही तो कोई माया नहीं है? यह स्वज है अथवा आदिदेव विघ्ननाशक विनायक का साक्षात् प्राकट्य?

वरदराज ने उनके मन की बात जान ली। बोले—‘प्रभो! आप जो समझ रहे हैं, मैं वही आदिदेव विनायक हूँ। वस्तुतः मेरे यथार्थ रूप को देवता, ऋषिगण तथा ब्रह्माजी भी नहीं जानते। वेद, उपनिषद्, षट्शास्त्र कोई भी मेरे रूप को वास्तविक रूप को कहने में समर्थ नहीं हैं। मैं चराचर जगत्, ब्रह्माजी और अनन्त ब्रह्माण्डों का रचयिता हूँ। सत्त्व, रज और तम तीनों गुण मुझमें ही प्रकट हैं, किन्तु उन गुणों का स्वामी होते हुए भी मैं उनसे परे हूँ।’ संसार की रचना, स्थिति और प्रलय मेरे ही कार्य हैं। आपने मेरा सौ वर्ष तक का निरन्तर चिंतन किया है, इसलिए मैं पूर्णरूप से सन्तुष्ट हूँ। आपकी कामना पूर्ण करने के लिए इस समय यहाँ प्रकट हुआ हूँ। अतः आप जो चाहें, मुझसे माँग लें।’

वरदराज की प्रसन्न मुद्रा देख और वरद वचन सुन कर शिवजी उनकी स्तुति करने लगे—

“दशापि नेत्राणि ममाद्य धन्यान्यथो भुजाः पूजनतस्तवाद्य।  
तवानतेः पञ्च शिरांसि धन्याः धन्यास्तु ते पञ्चमुखानि देव ॥”

‘हे देव! आपका पूजन करके मेरे दशों नेत्र और दशों भुजाएँ आज धन्य हैं। आपको प्रणाम करके मेरे पाँचों मस्तक और आपकी स्तुति करके मेरे पाँचों मुख धन्य हो गए। प्रभो! आप रजोगुण के द्वारा समस्त सृष्टि को रचते, सतोगुण द्वारा पालन करते और तमोगुण द्वारा प्रलय कर देते हैं। आप नित्य, निरपेक्ष और निर्लेप हैं।’

‘आप ही सभी जीवों के ईश्वर तथा उनके कर्मों के साक्षी और फल प्रदान करने वाले हैं। हे वरदराज ! त्रिपुरासुर को नष्ट करने का शीघ्र उपाय कीजिए, अन्यथा यह समस्त सृष्टि नष्ट हो जायेगी।’

वरदायक बोले—आप मेरे बीज मन्त्र का उच्चारण करते हुए शरसन्धान करेंगे तो अवश्य विजय प्राप्त होगी। मैं आपके द्वारा स्मरण करते ही आपके पास आकर कार्य पूर्ण करूँगा। मेरा बीजमन्त्र ‘गं’ है, इसके उच्चारण के साथ बाण छोड़ते ही त्रिपुरासुर के पुर ध्वस्त हो जायेंगे।’

## शिवजी द्वारा त्रिपुरासुर का विनाश

यह कहकर गणेश जी तुरन्त अन्तर्हित हो गए। उसके बाद शिवजी ने उनका भक्तिभाव से पूजन किया और देव-ब्रह्मादि को तृप्त करके पुनः उनकी महिमा को पुष्पाञ्जलि समर्पित की और बोले—‘गणपति का यह स्थान आज से मणिपुर नाम से विख्यात होगा।’

इसके पश्चात् शिवजी ने देवसेना एकत्रित की और त्रिपुरासुर की राजधानी की ओर चल दिये। गणेश जी का स्मरण करते ही उन्होंने देखा कि विघ्ननाशक भगवान् वीरवेश में स्वयं आगे-आगे चल रहे हैं।

त्रिपुरासुर के तीनों पुर अभेद्य थे, इसलिए असुर जानता था कि मेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। फिर भी उसने सुरक्षा का बड़ा प्रबन्ध कर रखा था। शिवजी ने गणेश जी के द्वारा बताई हुई विधि से ‘गं’ बीजमन्त्र का उच्चारण करते हुए शर-सन्धान किया और एक ही बाण से त्रिपुरासुर के पुरों को ध्वस्त कर दिया।

उस समय भगवती पार्वती भी अपने प्राणवल्लभ की विजय-कामना करती हुई गणपति-पूजन में लगी थीं। युद्ध में शिवजी की विजय हुई और त्रिपुरासुर मारा गया। देवसेना द्वारा भगवान् त्रिपुरारि की जय के साथ ही गजानन भगवान् की जय बोली जाने लगी।



१२ ७. सप्तम अध्याय

## पार्वती ने गणेश-पूजन किया

सूत जी बोले—‘हे शौनक ! फिर ब्रह्मा जी ने व्यास जी को जगज्जननी पार्वती जी द्वारा पुनः गणेश पूजन करने की बात बताई । महर्षि भृगु बोले—‘हे राजन् ! कार्तिकी पूर्णिमा में त्रिपुरासुर के भस्म होने का समाचार प्राप्त होने पर पार्वती जी गिरि-गुहा से बाहर आई तो अपने पिता हिमाचल और पतिदेव त्रिपुरारी को कहीं न देखकर वे दुःखात्त हो गईं और शोक के कारण रुदन करने लगीं । उनका रुदन एक भील ने सुना तो उसने हिमाचल के पास जाकर उनके रोने की बात सुनाई । इससे चिन्तित हुए पर्वतराज अपनी पुत्री गिरिजा के पास पहुँचे और पुत्री को धैर्य बँधाने लगे ।’

उस संत्रस्त गिरिराजनन्दिनी ने कहा—‘पिताजी ! न जाने भगवान् शंकर कहाँ हैं ? त्रिपुरासुर से युद्ध करने लगे थे और सुनते हैं कि वह असुर मारा गया, किन्तु वे अभी तक लौट कर नहीं आये । अब उनके सकुशल घर लौटने का उपाय क्या है ?’

ब्रह्माजी बोले—‘हे व्यास ! हिमालय ने कुछ देर विचार किया और फिर कहने लगे—‘बेटी ! भगवान् गणेश का पूजन करो । कल प्रातःकाल उठकर शौचादि से निवृत होकर स्नान करना और विष्णेश की मृणमय मूर्ति बनाकर उसका षोडशोपचारों से पूजन करना । भोग षड्हरस भोजन रखना, किन्तु ध्यान रहे कि उसमें मोदक ( लड्डू ) अवश्य हो । भक्तिभाव पूर्वक गणेशजी का ध्यान, स्तवन, नीराजन आदि करने से वे शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं । जब तक शिवजी न लौटें तब तक गणेश जी के एकाक्षरी ‘ग’ मन्त्र का जप करती रहना । वैसे, इसके एक लाख जप से अनुष्ठान पूर्ण हो जाता है ।’

‘सामान्य स्थिति में श्रावणशुक्ल चतुर्थी से भाद्रशुक्ल चतुर्थी तक एक मास पर्यन्त गणपति-पूजन एवं अनुष्ठान करे । पूजन के लिए एक मूर्ति से एक सौ आठ मूर्ति तक ले सकती हो । अनुष्ठान पूर्ण होने पर उद्यापन किया जाता है । उस दिन जप का दशांश हवन, हवन का दशांश तर्पण और तर्पण का दशांश ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिए ।

‘फिर उन्हें दक्षिणादि देकर मूर्ति का किसी पवित्र नदी या सरोवर में विसर्जन करना चाहिए । विशेष स्थिति में यह जप, पूजन, अनुष्ठानादि कभी भी आरम्भ किया जा सकता है ।’

## राजा कर्दम का दृष्टान्त-कथन

‘हे पार्वती ! कल शुभ दिन है, तुम कल से उनका पूजन और जप प्रारम्भ कर दो । देखो, उसी अनुष्ठान के प्रभाव से पूर्वकाल में एक सामान्य मनुष्य को अगले जन्म में राजा के घर जन्म मिला । वह राजा समस्त पृथ्वी का अधीश्वर, राजाओं का स्वामी और अत्यन्त वैभवशाली हुआ । इसका नाम कर्दम था ।

‘एक बार वह राजा महर्षि भृगु के आश्रम में गया । वहाँ महर्षि ने उसे अनेक इतिहास कथाएँ सुनाईं । तभी प्रसंगवश राजा ने अपने वैभव-सम्पन्न होने का कारण पूछा तो महर्षि ने ध्यान करके बताया—‘राजन् ! पूर्व जन्म में तुमने गणेश्वर के एकाक्षरी मन्त्र का अनुष्ठान किया था, जिससे प्रसन्न होकर गणपति ने तुम्हें राजराजेश्वर होने का वर प्रदान किया । तुम उस जन्म के एक दरिद्र क्षत्रिय के घर में उत्पन्न होने के कारण जीवन भर दुःख भोगते रहे, तब एक दिन आत्मघात को तत्पर हुए तुम वन में भटक रहे थे, तभी सौभरि ऋषि से तुम्हारी भेंट हुई और तुमने उनसे संकट निवारण का उपाय पूछा ।

‘उन दयालु ऋषि ने तुम्हें गणपति के एकाक्षरी मन्त्र का उपदेश

किया। तब तुमने उस अनुष्ठान को अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिपूर्वक किया, जिसके फलस्वरूप उस जन्म में तुम्हारी शेष आयु सुखपूर्वक व्यतीत हुई और उसी के प्रभाव से इस जन्म में सम्राट् हुए हो।'

## राजा नल का दृष्टान्त-कथन

हिमालय ने कहा—‘हे उमे ! निषध देश के राजा नल ने भी उन्हीं विघ्नेश्वर का पूजन करके अभीष्ट प्राप्त किया था। वह राजा अत्यन्त ऐश्वर्यशाली, धर्मज्ञ, राज-राजेश्वर और महाबली था। समस्त विश्व में उसकी यश-पताका फँहरा रही थी। वह जैसे नीति निधान था, वैसे ही ज्ञानवान् भी था, उसके पास सदैव विद्वान् ब्राह्मणों, ऋषि-मुनियों, मनीषियों आदि का जमघट लगा रहता था।’

‘एक दिन उसकी सभा में महर्षि गौतम पधारे। राजा ने उनका अर्घ्य-पाद्यादि पूर्वक अत्यन्त स्वागत-सत्कार किया और जब वे सुखद आसन पर विराजमान हो गये तब राजा ने उनसे कोई पुराण-कथा करने का निवेदन किया। महर्षि ने कुछ समय में ही उन्हें अनेक कथाएँ सुना दीं तभी भगवान् गणेश्वर का प्रसंग आ गया। ऋषि बोले—‘हे राजन् ! भगवान् गणेश्वर समस्त देवताओं के अधीश्वर एवं सर्वात्मा हैं। वे जिस पर कृपा करते हैं, वह परम भाग्यवान् हो जाता है।’

राजा ने निवेदन किया—‘भगवन् ! सब देवताओं के अधीश्वर तो भगवान् विष्णु माने जाते हैं तथा कुछ विद्वान् त्रिलोचन को भी सर्वेश्वर कहते हैं, किन्तु गणेश जी को सबका स्वामी कहते तो किसी को भी नहीं सुना। अब आप उन्हें ऐसा क्यों कहते हैं ?’

महर्षि बोले—‘महाराज ! भगवान् गणेश्वर साक्षात् ब्रह्म हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर तो उन्हीं प्रभु के अंशावतार हैं। उन सभी ने भगवान् वरदराज की उपासना करके ही अपनी-अपनी कार्य-क्षमता प्राप्त की थी।

अन्य देवताओं और ऋषियों आदि ने भी उन्हीं गणेश्वर की उपासना करके सिद्धि प्राप्त की है। यह जितने भी राजे-महाराजे हुए हैं, वे सब उन्हीं भगवान् की कृपा से हुए हैं। हे राजन् ! तुमको भी इस वैभव की प्राप्ति में उन्हीं गणाध्यक्ष की ही कृपा निहित है।'

महाराज नल ने पूछा—‘प्रभो ! मैंने तो कभी उन भगवान् की पूजन-आराधना विशेष रूप से नहीं की है। केवल विभिन्न संस्कारों और देव-पूजनों में गणेशजी का जो आदि पूजन होता है, वही किया होगा।’

गौतम ने कहा—‘राजन् ! तुमने जो गणेश-उपासना की है, उसकी भी बात सुनो। पूर्व जन्म में तुम गौड़ देश के पिघल नगर के निवासी थे। तुम्हारा जन्म एक सामान्य क्षत्रिय-परिवार में हुआ था। सर्वत्र तिरस्कृत रहने के कारण तुम बहुत दुःखित थे, तभी महर्षि कौशिक से तुम्हारी भेंट हुई। तुमने उनसे अपने दुःख की बात कहकर उसके निवारण का उपाय पूछा। महर्षि ने कृपापूर्वक गणेश जी के एकाक्षरी मन्त्र के प्रभाव से इस जन्म में तुम अत्यन्त ऐश्वर्यवन्त राजराजेश्वर हुए हो।’

## राजा चित्रांगद का दृष्टान्त-कथन

हिमालय ने कहा—‘हे पुत्रि ! राजा चित्रांगद की साध्वी रानी को भी अपने पति का विरह-दुःख प्राप्त हुआ था, जिसका निवारण गणेश्वर के पूजन से ही हुआ था। इसका इतिहास यह है कि राजा चित्रांगद मालव देश का राजा था। वह अत्यन्त शक्तिशाली और विद्वान् था। उसकी सुन्दरी भार्या का नाम इन्दुमती था।

‘वह राजा एक दिन शिकार खेलने गया था। भीषण अरण्य में एक राक्षसी से उसका सामना हो गया। वह राक्षसी राजा पर आसक्त हो गई। उसने राजा से परिणय-निवेदन किया, किन्तु राजा ने उसकी बात नहीं मानी। इससे क्रुद्ध हुई राक्षसी राजा को खाने के लिए दौड़ी। यह देखकर

राजा वहाँ से भाग कर एक सरोवर में जा छिपा । किन्तु वहीं कुछ नाग-कन्याएँ स्नानार्थ आईं और राजा को देखकर उसपर लुब्ध हो गईं और वे उसे बलपूर्वक अपने साथ पाताल-लोक में लिवा ले गईं और उससे प्रणय निवेदन करने लगीं ।

‘हे पार्वती ! राजा ने उनका प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया । इससे वे नागकन्याएँ भी रुष्ट हो गईं और उन्होंने राजा को बन्धन में डाल दिया । उधर रानी इन्दुमती पति के न लौटने से बड़ी चिन्तित हुई । उसने राजा के वियोग में अच्छा भोजन एवं आभूषणादि का भी त्याग कर दिया और दिन-रात रोती रहती । एक दिन भ्रमण करते हुए नारद जी वहाँ आ पहुँचे । उन्होंने रानी की अधिक व्याकुलता देखी तो दयापूर्वक बोले—

‘महारानी ! इस विपत्ति से छुटकारा पाने का उपाय तुम्हें बताता हूँ, सुनो । भगवान् विघ्ननाशक समस्त संकटों को दूर करने में समर्थ हैं, तुम उनका पूजन करके एक मास तक उनके एकाक्षरी मन्त्र का जप करो । इस अनुष्ठान से तुम्हारी कामना अवश्य पूर्ण हो जायेगी ।’

‘नारदजी अनुष्ठान-विधि बताकर चले गये । रानी ने धैर्य धारण कर शुभ दिन में प्रातःकाल स्नानादि से निवृत्त होकर श्रीगणेश्वर की मृण्मय मूर्ति स्थापित कर विधिवत् षोडशोपचार पूजन, स्तवन, नीराजन करके जप का आरम्भ कर दिया और एक मास तक एक लाख जप का अनुष्ठान पूर्ण कर, हवन, ब्राह्मण-भोजन, दान-पुण्य आदि कर प्रतिमा का विसर्जन किया । हे उमे ! रानी प्रसन्नचित्त से उन विघ्ननाशक प्रभु का फिर भी स्मरण करती रही ।

‘तभी भगवान् गणेश्वर ने बुद्धिदेवी को नागकन्याओं के प्रेरणार्थ प्रेषित किया, जिससे उन्होंने तुरन्त ही राजा को कारागार से बाहर निकाला और उसे स्नान कराकर वस्त्राभूषण पहिनाये और सम्मानपूर्वक उसके राज्य में वापस भेज दिया । यह गणेश जी की ही आराधना का प्रभाव था कि रानी को अपने प्राणपति की प्राप्ति हो गई ।’

यह कहकर हिमालय चुप हो गए। पार्वती जी ने दूसरे दिन प्रातःकाल प्रसन्न मन से नित्य कर्मों से निवृत्त होकर श्रीगणेश जी की १०८ मृत्तिका प्रतिमाएँ बनाई और उन्होंने सुन्दर सुखद आसनों पर प्रतिष्ठित कर संकल्पपूर्वक षोडशोपचार से पूजन किया। फिर भक्तिभाव से सुन्ति, नीराजन, प्रदक्षिणा आदि करके एकाक्षरी मन्त्र का एक मास तक जप किया और अन्त में हवन-तर्पण और ब्राह्मण-भोजन कराकर सभी को अभीष्ट दक्षिणा दी। फिर अध्यागतों आदि को भी गौ, रत्न, अन, वस्त्र आदि विविध वस्तुओं का दान किया। फिर स्वयं भोजन करके भगवान् गणेश्वर का ध्यान करने लगीं। इसी के प्रभाव से उन्हें भगवान् शंकर की प्राप्ति हो गई।



।३

## ८. अष्टम अध्याय

### देवराज इन्द्र के विमान का पतन वर्णन

सूतजी बोले—‘हे शौनक ! फिर चतुरानन ने व्यास जी के प्रति राजा शूरसेन का उपाख्यान कहा—जिसे महर्षि भूगु ने राजा सोमकान्त को इस प्रकार बताया—‘हे राजन् ! मध्यदेश में सहस्र नामक एक विख्यात नगर था, जिसमें रहकर राजा शूरसेन राज्य करता था। यह राजा अत्यन्त पराक्रमी, शंत्रुजेता और विद्वान् था। एक दिन राजा अपनी राज-सभा में श्रेष्ठ सिंहासन पर विराजमान था, तभी उसने कुछ दूर पर एक विमान गिरता देखा। राजा ने अपने दूतों को उसका पता लगाने का आदेश दिया तो उन्होंने लौटकर बताया—‘महाराज ! वह विमान देवराज इन्द्र का है।’

यह सुनकर राजा तुरन्त वहाँ पहुँचा और उसने देवराज से विमान के गिरने का कारण पूछा। इन्द्र ने उत्तर दिया—‘राजन् ! मैं गणेश रूप

भृशुण्ड ऋषि के दर्शन करके लौट रहा था, तभी मेरे विमान पर तुम्हारे एक कुछी दूत की दृष्टि गई, उसी से यह विमान गिर गया है।'

राजा शूरसेन ने कहा—‘प्रभो! भृशुण्ड ऋषि कौन है? उनके दर्शनों की ऐसी क्या महिमा है, जिससे आप जैसे महा-महिम भी उनके दर्शनार्थ पधारे! यह सब मुझे बताने की कृपा करें।’

इन्द्र बोले—‘राजन्! इस वर्णन का आरम्भ एक इतिहास से करना होगा। दण्डकारण्य में नाभा एक अत्यन्त क्रूर लुटेरा कोल रहता था। वह मनुष्य, देवता, ऋषि आदि कोई भी क्यों न हो, सभी को लूटता फिरता था। उस दस्यु ने एक बार महर्षि मुदगल के आश्रम पर आक्रमण कर दिया, किन्तु महर्षि के भय-रहित एवं सौम्य स्वरूप को देखकर उसका हृदय धड़कने लगा और हाथ काँपने लगे। उसका मानसिक उद्देश इतना बढ़ा कि शरीर से स्वेद की धारा ही बह उठी। निकट ही गणेश-तीर्थ था, उसने सोचा कि शरीर में स्फूर्ति लाने के लिए पहिले स्नान कर लूँ।

‘इसलिए उसने उस कुण्ड में गोता लगाया ही था कि उसकी वृत्ति बदल गई। अब उसने महर्षि मुदगल के पास जाकर उनके चरण पकड़ लिये और अपने अपराध की क्षमा माँगने लगा।

हे महाराज! ऋषि तो दयालु थे ही, उन्होंने उस दस्यु को क्षमा कर दिया, तब उसने निवेदन किया—‘भगवन्! मैंने अब तक बहुत पाप किए हैं, उनसे निवृत्ति का कुछ उपाय बताइए।’ यह सुनकर महर्षि ने उसे गणेश का सप्ताक्षरी मन्त्र ‘ॐ गणेशाय नमः’ का उपदेश किया और फिर बोले, वत्स! मैं! यहाँ एक काष्ठ गाड़ देता हूँ उसके अंकुरित होने तक तुम तपस्या करते रहोगे तो अभीष्ट की अवश्य पूर्ति होगी।’

‘वह महर्षि को प्रणाम कर वन में मन्त्र जपता हुआ तपस्या करने लगा। उसे तप करते-करते एक सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये। तब सहसा वह लकड़ी अंकुरित हो गई। उसी समय महर्षि मुदगल ने उसे दर्शन दिये

और उसे सुन्दर एवं दिव्य देह युक्त करके अपना पुत्र बना लिया। तदुपरान्त उन्होंने उसे गणेश्वर का एकाक्षरी बीज मन्त्र दिया। उसने उस मन्त्र का अत्यन्त भक्तिभाव से अनुष्ठान किया तथा अनुष्ठान के सम्पन्न होने पर उसकी भृकुटी से एक सूँड़ निकल पड़ी। तभी से उसका नाम भृशुण्डी हो गया।

हे राजन् ! तदुपरान्त महर्षि ने उसे वर दिया कि 'जो कोई तुम्हारा दर्शन करेगा, वही मोक्ष को सहज ही प्राप्त कर लेगा और तुम एक लाख कल्प तक जीवित रहोगे।' तब से वह कोल परम सिद्ध महाज्ञानी एवं महर्षि हो गया। संसार भर के बड़े-बड़े महर्षि एवं देवता आदि उनके दर्शन को आने लगे। मैं भी उनकी महिमा सुनकर उनके दर्शनार्थ आया था।

राजा शूरसेन ने यह इतिहास सुनकर पुनः पूछा—'प्रभो ! अब आपका यह विमान किस प्रकार उठने योग्य होगा ?' इसपर इन्द्र बोले—'राजन् ! तुम्हारे राज्य में कोई संकष्टीव्रत करने वाला पुण्यात्मा जब अपने एक वर्ष का पुण्य देगा, तभी यह उठेगा।'

## गणेश्वर के संकष्टी-व्रत का इतिहास वर्णन

जब राजा ने पूछा कि 'देवराज ! वह व्रत किस प्रकार किया जाता है ?' तो उन्होंने उत्तर दिया—'नृपेश्वर ! मैं तुम्हें एक इतिहास सुनाता हूँ। पुरा काल में कृतबीर्य नामक एक राजा हो गया है। उसकी पत्नी सुगन्धा अति रूपवती और साध्वी थी। उससे कोई सन्तान नहीं हुई। राजा ने अनेक पुत्रेष्टि यज्ञ किए तो भी कोई फल नहीं निकला। अमात्यों ने परामर्श दिया—'महाराज ! अब तो निवासपूर्वक तपश्चर्या कीजिए।'

राजा को परामर्श उचित प्रतीत हुआ। उसने अमात्यों को राज्य की रक्षा का भार सौंपा और पत्नी सहित वन में चला गया। इस प्रकार दम्पति

घोर तपस्या करने लगे। एक दिन नारद जी पितृलोक गये थे तो वहाँ उनकी भेंट कृतवीर्य के पितरों से हुई। उनके कुशलक्षेम पूछने पर नारद जी ने कहा कि 'कृतवीर्य को जब तक स्वर्ग की प्राप्ति कराने वाले पुत्र की प्राप्ति न होगी, तब तक वह पत्नी सहित कठिन तप करता रहेगा और यदि पुत्र की प्राप्ति न हुई तो वह इसी प्रकार अपने प्राण दे देगा।'

तदुपरान्त देवर्षि यमलोक में पहुँचे, वहाँ उन्होंने भृशुण्डी ऋषि के माता-पिता को अग्निमय कुम्भीपाक में दग्ध होते हुए देखा। उनको बड़ी दया आई। उन्होंने भृशुण्डी ऋषि के पास जाकर उनकी दशा का वर्णन करने के पश्चात् कहा—'मुनिवर! आपके माता-पिता कुम्भीपाक नरक में पड़े हुए घोर दुःख भोग रहे हैं, उनके उद्धार का कुछ उपाय कीजिए।' तब भृशुण्डी ऋषि ने अपने संकष्टी-व्रत का पुण्य सभी पितरों के लिए दिया, जिससे उनके माता-पिता सहित अन्य सब पितर भी मुक्त हो गये।

राजा ने पूछा—'हे देवेन्द्र ! आपने भृशुण्डी के पितरों के मुक्त होने का वृत्तान्त तो कहा, किन्तु कृतवीर्य के विषय में बताया कि उसके पितरों ने नारद जी को क्या उत्तर दिया ?' वह भी बताने की कृपा कीजिए।

देवराज बोले—'नरेन्द्र ! उसका भी उत्तर सुनो। उन राजा के पिता ने नारद जी से तो यह कहा कि 'उसका उपाय करेंगे' और फिर वह तुरन्त ही ब्रह्माजी के पास गया और उन्हें प्रणाम कर निवेदन किया, ब्रह्मन् ! मेरा पुत्र तो अत्यन्त धार्मिक और ईश्वर-भक्त है, उसको पुत्र की प्राप्ति क्यों नहीं हुई ? यह सुनकर ब्रह्माजी बोले—'तुम्हारे पुत्र ने पूर्व जन्म में ब्रह्महत्या की थी। वह नन्दुर नामक नगर में निवास करता था उसने धन के लोभ में बारह वेदज्ञ ब्राह्मणों को मार डाला और उनका धन लेकर अपने घर आ गया। उस दिन माघकृष्णा चतुर्थी थी तथा जब वह घर आया था उस समय चन्द्रोदय हो चुका था, उसने अपने समस्त परिवारीजनों के साथ बैठकर अपने पुत्र गणेश को पुकारा। जब वह आ गया तब सभी ने भोजन किया।

तदुपरान्त उसकी मृत्यु हो गई। हे राजन् ! उस दिन वह दिनभर भूखा रहा और गणेश का उच्चारण कर भोजन किया। उसे संकष्टि चतुर्थी में दिनभर भूखे रहने से व्रत का और 'गणेश' उच्चारण से नाम स्मरण का पुण्य प्राप्त हो गया। जिसके फलस्वरूप तुम पुण्यवान् नरेश के यहाँ उसका जन्म हुआ और तुम्हारे पश्चात् उसे राज्यपद की प्राप्ति हो गई। अब यदि वह संकष्टि चतुर्थी का व्रत करे तो उसकी ब्रह्म-हत्या छूटकर पुत्र-लाभ हो सकता है।'

यह सुनकर कृतवीर्य का पिता अपने स्थान पर लौट आया और अपने पुत्र को संकष्टि चतुर्थी-व्रत करने की स्वज में प्रेरणा दी। तब राजा ने यह व्रत करके गणेश जी का और चन्द्रमा का पूजन किया, जिसके प्रभाव से उसे सुन्दर पुत्र की प्राप्ति हो गई।

ब्रह्माजी बोले—‘हे व्यास ! इन्द्रदेव से गणेशजी के पूजन-व्रत, जप आदि की ऐसी महिमा सुनकर राजा शूरसेन ने अपने राज्य में ढिंढोरा पिटवा कर घोषणा की कि जिस किसी ने संकष्टि व्रत किया हो, वह राजा के समक्ष उपस्थित हो, राजा उसे अभीष्ट धन प्रदान करेंगे। यद्यपि उस राज्य में गणेशजी का उक्त व्रत करने वाले कई गणेश-भक्तों का निवास था, तथापि उन्हें उस घोषणा से यह आशंका हुई कि कहीं राजा कोई दण्ड न दे बैठे, सम्भव है कि अभीष्ट धन देने की बात लोभ दिलाने के लिए ही कहलाई हो।’

हे द्वैपायन ! इस भय से कोई भी राज्यसभा में जाने को इच्छुक नहीं था, किन्तु तब भी एक व्यक्ति वहाँ पहुँच कर बोला—‘राजन् ! मैंने निरन्तर कई वर्षों तक संकष्टि-चतुर्थी में व्रत किये हैं। यदि आप मेरे कार्य को ठीक समझते हों तो आज्ञा कीजिए कि मैं क्या करूँ ? यदि कहीं आपने प्रलोभन देकर दण्ड देने के उद्देश्य से मुझे बुलाया है तो भी मैं प्रस्तुत हूँ।’

दण्ड की बात सुनकर राजा को हँसी आ गई। उसने उस व्यक्ति को

सम्मान सहित बैठाकर सुरेश्वर के विमान गिरने की घटना बताई और अपना एक वर्ष का पुण्य प्रदान करने का उससे निवेदन किया। राजा की बात सुनकर उसने सहर्ष अपने एक वर्ष के संकष्टि-ब्रत दान का संकल्प कर दिया।

हे द्वौपायन ! उसके संकल्प करते ही इन्द्रदेव का विमान ऊपर उठ गया। इस प्रकार देवराज अपने लोक को गये। तब राजा ने उस व्यक्ति को अभीष्ट धन देकर ससम्मान विदा किया और फिर स्वयं भी प्रति वर्ष संकष्टि ब्रत करने लगा, जिसके प्रभाव से इहलोक और परलोक में पूर्ण आनन्द की प्राप्ति हुई।

व्यासजी ने पूछा—‘हे ब्रह्मन् ! संकष्टि-ब्रत का आपने इतना अधिक माहात्म्य बताया है, किन्तु कुछ विद्वान् अन्य चतुर्थियों में ब्रत करना श्रेष्ठ मानते हैं ? तब कौन-सी बात ठीक है ?’

ब्रह्माजी बोले—‘हे द्वौपायन ! सभी चतुर्थियों के ब्रतों का बहुत माहात्म्य है। जिस पर जो ब्रत बन जाय, वह उसी को करके अपने अभीष्ट की प्राप्ति कर सकता है। परन्तु ब्रत के विधान में अन्तर अवश्य है। श्रावण मास की चतुर्थी में सात मोदक खाकर रहे, भाद्रपद की चतुर्थी में दोनों का सेवन करे और आश्विन की चतुर्थी में पूर्ण उपवास।

कार्तिक में दुग्धाहार करे और मार्गशीर्ष में निराहार रहे। पौष मास में गोमूत्र, माघ में तिल और फाल्गुन में धृत-शर्करा सेवन करे। चैत्र में पंचगव्य, वैशाख में शतपत्र, ज्येष्ठ में केवल धृत और आषाढ़ में केवल मधु खाना चाहिए। यह प्रत्येक मास की चतुर्थी के ब्रत का विधान मैंने तुम्हें बता दिया है।



## ९. नवम अध्याय

### शिव-पार्वती-सुदामा वर्णन

शौनक बोले—‘हे सूतजी ! हे प्रभो ! आपने भगवान् गणेश्वर के बड़े सुन्दर-सुन्दर चरित्रों पर प्रकाश डाला है। वस्तुतः यह चरित्र सुनाने में आप ही समर्थ थे। हे दयामय ! उनके और भी जो-जो महत्त्वपूर्ण चरित्र हों, उन्हें कहने की कृपा कीजिए।’

सूतजी ने प्रसन्न होकर कहा—‘हे शौनक ! हे महाभाग ! तुम धन्य हो जो गणेश्वर का चरित्र सुनते-सुनते तुम्हारी तृप्ति ही नहीं होती। अब मैं तुम्हें इन्हीं से सम्बन्धित एक अन्य कथा सुनाता हूँ। एक बार नारद जी सत्यलोक में गये थे। वहाँ उन्होंने लोकपितामह ब्रह्माजी से पूछा था कि ‘प्रभो ! सर्वसुलभ उपासना किस देवता की है ? अधिक कठिनाई भी न हो और अभीष्टों की भी प्राप्ति हो जाय।’

ब्रह्माजी बोले—‘देवर्षे ! तुम्हारे जैसा ही प्रश्न एक बार पार्वती जी ने भगवान् शंकर से किया था। शिवजी बोले—‘श्रीगणेशजी की उपासना ही सर्वसुलभ और समस्त अभीष्टों को देने वाली है।’ पार्वती जी को इतने उत्तर से सन्तोष नहीं हुआ, इसलिए उन्होंने पूछा—‘यह उपासना करके किस-किस को सहज में ही अभीष्ट सिद्धि हो गई सो बताइये नाथ !’

### शिवजी द्वारा सुदामा के वैभव-सम्पन्न होने का वर्णन

शिवजी बोले—‘हे प्रिये ! द्वापर युग की बात है, सुदामा नामक एक अत्यन्त दरिद्र, सदाचारी एवं विद्वान् ब्राह्मण थे। वे आर्थिक संकट से बहुत ही दुःखित रहते थे। एक दिन उनकी पत्नी ने उनसे निवेदन किया—‘प्राणनाथ ! आप व्यर्थ ही इतना कष्ट क्यों उठा रहे हैं ? भगवान्

त्रिलोकीनाथ आपके बालमित्र हैं, आप उनके पास जाइये । वे प्रभु आपकी दरिद्रता अवश्य ही दूर कर देंगे ।'

यद्यपि सुदामा अपने मित्र से कुछ माँगना नहीं चाहते थे, तथापि उन्हें पत्नी के अत्यधिक आग्रह के कारण जाना पड़ा । पत्नी ने थोड़े से चावल मैले चिथड़े में बाँधकर सौगात के रूप में उन्हें दे दिये । बेचारे सुदामा मार्ग पार करते हुए किसी प्रकार द्वारिकापुरी पहुँचे । किन्तु राजभवन पर जो प्रहरी थे, उन्होंने उन्हें घुसने नहीं दिया, बोले—‘बावला हुआ है क्या ? वे राज-राजेश्वर तेरे जैसे फटे-हाल से कैसे मिलेंगे ?’

सुदामा ने अपनी मित्रता की बात बताई तो वे हँसने लगे । किन्तु, बहुत आग्रह करने पर उन्हें दया आ गई । एक प्रहरी ने द्वारिकापति से जाकर कहा—‘प्रभो ! कोई सुदामा नामक दरिद्र ब्राह्मण द्वार पर खड़ा है, वह मिलना चाहता है आपसे ।’

सुदामा का नाम सुनते ही भगवान् दौड़े आये द्वार पर और गले मिलकर लिबा ले गये अपने साथ । सभी प्रहरी अवाकू देखते रह गये । राजभवन में सुदामा का बड़ा भव्य-स्वागत हुआ । दोनों मित्र बड़े प्रेम से पुरानी बातें कर रहे थे, तभी उन्होंने सुदामा के साथ ही पोटली देख ली । सुदामा उसे छिपाने लगे तो भगवान् ने उसे झापट कर खोला और कुछ चावल खाकर बोले—‘यह तो बड़े स्वादिष्ट हैं मित्र ! ऐसे अमृतोपम पदार्थ को मुझसे छिपाते हो ?’

फिर कुशल-प्रश्न हुआ दोनों ओर से । सुदामा ने सर्वकुशल बताते हुए अपनी दरिद्रता की बात कही जिसे सुनकर श्रीकृष्ण बोले—‘मित्र ! तुम गणेश्वर की पूजा नहीं करते हो क्या ? यदि उन प्रभु को प्रसन्न कर लो तो सभी कामनाएँ पूर्ण हो जायें ।’

सुदामा ने पूछा—‘यह गणेश्वर कौन हैं ? इनकी पूजा का विधान क्या है ?’ भगवान् बोले—‘गणेश्वर उस परब्रह्म परमात्मा का ही नाम है जो अनादि, अनन्त, सर्वेश्वर एवं परम पूजनीय हैं । ब्रह्मा, विष्णु और शिव

भी उन्हीं के अनुशासन में रहकर सृष्टि के संग पालन और लय करते हैं। वे ही प्रभु एकमात्र उपासनीय एवं सर्व कामदाता हैं। समस्त देवता, ऋषि-मुनि एवं वेदज्ञ ब्राह्मण उन्हीं गणेशजी की उपासना में सदैव लगे रहते हैं। तुम भी उन्हीं का पूजन और व्रत करो।'

सुदामा ने पूछा—‘गणेशजी का व्रत कब करना चाहिए? उनके ध्यान, पूजन, व्रतांत को कैसे किया जाता है, यह भी कहिए।’ कृष्ण बोले—‘हे विप्रवर! हे सखे! तुम इनका व्रत किसी भी मास की चतुर्थी में कर सकते हो। अथवा वैशाखी पूर्णिमा, कार्तिकी पूर्णिमा या अन्य किसी पुण्य अवसर पर करो। यदि मंगल, शुक्र या रविवार के दिन करो तो भी शुभ है। प्रातःकाल स्नानादि से निवृत्त होकर व्रत का संकल्प लेना चाहिए। फिर तिल और आँवले के चूर्ण का उबटन लगाकर पुनः स्नान करे।

‘एक स्नान प्रदोष काल में और भी कर ले तो अत्युत्तम। स्नान के पश्चात् स्वस्तिवाचन, पुण्याहवाचन एवं नवग्रहों का पूजन करे। धरती को गोबर से लीपकर चौक पूरे और चौकी रखकर उसपर कलश स्थापन करे। फिर गणेशजी की धातु की, मृत्तिका की मूर्ति स्थापित कर षोडशोपचार से पूजन करे। भोग में उत्तम घृतादि के साथ निर्मित मोदक रखे। यदि यह सम्भव न हो तो समस्त उपचार मानसिक भी हो सकते हैं। हे मित्र! भावना सर्वोपरि है, इसलिए पूजन में भक्तिभाव भी विशेष फलदायक होता है। यदि श्रद्धा हो तो पूजन कार्य सम्पन्न होने पर ब्राह्मणों को भोजन करावे और यथाशक्ति दक्षिणा दे। सबके अन्त में अपने परिवारीजनों एवं पत्नी, पुत्रादि के साथ बैठकर स्वयं भोजन करे। यह व्रत का विधान तुम्हें बता दिया है।’

सुदामा बोले—‘इस व्रत को पहिले किसने किया था?’ श्रीकृष्ण ने इसके उत्तर में कहा—‘एक बार प्रलय के पश्चात् सृष्टि की उत्पत्ति होनी थी। परन्तु ब्रह्माजी को अनेक विज्ञों का सामना करना पड़ा। तब ब्रह्माजी ने गणपति का ही पूजन किया और उनसे शक्ति प्राप्त करके सृष्टि रचना

का कार्य सम्पन्न किया । हे सखे ! मुझे भी दुष्ट-दलन करके धर्म संस्थापनार्थ अवतार लेने की शक्ति उन्हीं गणाधीश्वर से प्राप्त हुई है । मैं तो प्रति शुक्रवार में गणेशजी का व्रत किया करता हूँ ।'

यह सुनकर सुदामा के मन में बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने अयाचित वृत्ति से प्राप्त होने वाले द्रव्य से वहीं गणेशजी के पूजन का संकल्प किया और श्रीकृष्ण के परामर्श से उन्हीं के साथ आराधन कर प्रसाद ग्रहण किया और फिर उन्होंने भगवान् से घर जाने की अनुमति माँगी । जब चले गये तब श्रीकृष्ण उन्हें बहुत दूर तक पहुँचाने आए । फिर सुदामा के आग्रह से अपने भवन को लौटे ।

## व्यापारी के धन चोरी होने का वर्णन

उधर सुदामा जी अपने घर को शीघ्रता से चल पड़े, तभी मार्ग में उनकी मणि नामक एक धनवान् व्यापारी से भेंट हुई । रात्रि में सुदामा जहाँ ठहरे थे, वहीं व्यापारी आ ठहरा । किन्तु जब वह प्रगाढ़ निद्रा में था तब चोरों ने उसका सभी बहुमूल्य धन चुरा लिया । जब उसकी आँख खुली, तब उसने वह संकल्प किया कि 'यदि गया हुआ धन मिल जाय तो उसका आधा भाग ब्राह्मण को दान कर दूँगा ।'

उसने ऐसा निश्चय किया ही था कि उसे एक सन्दूक कुछ ही दूर पड़ा दिखाई दिया । दौड़कर उसने सन्दूक उठाया तो यह बहुत सारे रत्नादि से भरा पाया । उसने प्रसन्न होकर सन्दूक का आधा धन सुदामा को दान कर दिया । सुदामा को उससे बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने उस धनिक व्यापारी को भी साथ लेकर भगवान् गणाध्यक्ष का वहीं पूजन किया ।

सायंकाल में जब पूजन कार्य सम्पन्न हो गया, तब सुदामा को भगवान् गणेश्वर के साक्षात् दर्शन हुए । सुदामा ने भक्तिभावपूर्वक उनके चरण पकड़ लिये और स्तवन करने लगे । उन्होंने प्रभु से निवेदन किया - 'हे

दयानिधे ! हे सत्यस्वरूप ! परात्पर ब्रह्म ! आप परम दयालु और भक्तवत्सल हैं। हे नाथ ! आपकी महिमा अपरम्पार है, जिसे ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी नहीं जान पाते, तो मेरे जैसे तुच्छ जीव के तो कहने ही क्या हैं ? हे प्रभो ! आप सर्वशक्तिमान् की स्तुति के लिए सार्थक शब्दों का भी तो मुझे ज्ञान नहीं है। हे दीनबन्धो ! मुझपर दया कीजिए, आपको बारम्बार नमस्कार है, नमस्कार है।'

श्रीगणेश जी ने प्रसन्न होकर सुदामा के मस्तक पर अपना वरदं हस्त फेरते हुए कहा—‘विप्रश्रेष्ठ ! वर माँगो। मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ।’

सुदामा ने हाथ जोड़कर कहा—‘करुणासिन्धो ! जब आप सर्व ऐश्वर्यमय की मुझपर पूर्ण कृपा है तो फिर क्या माँगूँ ? हे नाथ ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे अपनी अनन्य दृढ़ भक्ति प्रदान कीजिए। बस, यही मेरे लिए अत्यन्त श्रेष्ठ वर होगा।’

गणेश्वर ‘एवमस्तु’ कहकर अन्तर्धान हो गए। उस समय वह धनिक भी वहाँ उपस्थित था। उसने सुदामा से गणेशजी के पूजन और माहात्म्य सम्बन्धी कुछ बातें पूछीं और फिर उसने स्वयं भी श्रीगजानन का व्रत करने का संकल्प किया।

१५ सुदामा पर भगवान् गणाध्यक्ष की बड़ी महती कृपा हुई। सुदामा वहाँ से चलकर अपने घर पहुँचे तो यह देखकर अत्यन्त विस्मय करने लगे कि वहाँ कहीं भी उनकी पर्णकुटी नहीं है। वरन् एक अत्यन्त वैभवशाली भवन खड़ा है जो वहाँ कभी नहीं था। सुदामा सोचने लगे कि यह क्या हुआ ? क्या किसी ने मेरी कुटी तुड़वाकर अपना महल बनवा लिया ? और यदि ऐसा है तो मेरी पत्नी कहाँ गई ?

सुदामा इस प्रकार चिन्ता में पड़े थे, तभी उनकी पत्नी ने भवन के भीतर से उन्हें देख लिया और सेवकों को उन्हें बुला लाने की आज्ञा दी। जब सुदामा भीतर गए तो उनकी पत्नी ने कहा—नाथ ! रात में मैं अपनी

पर्णकुटी में सोई थी और प्रातः आँख खुलने पर अपने को इस राजसी भवन में पाया । मुझे आश्चर्य है कि यह सब क्या हो गया ! यह इतने दास-दासी भी न जाने कहाँ से आ गए ?'

तब सुदामा ने भगवान् गणेशजी के प्रसन्न होने का समस्त वृत्तान्त आद्योपान्त सुना दिया । फिर तो वे प्रति मास ही गणेशजी का पूजन करने लगे तथा यहाँ सर्वसुख भोगकर अन्त में गणेश-लोक को प्राप्त हुए ।

## चोरों से वैश्य को धन की पुनः प्राप्ति कथन

शौनक बोले—‘हे प्रभो ! यह तो आपने बड़ा सुन्दर वृत्तान्त सुनाया । अब यह बताने की कृपा करें कि उस वणिक व्यवसायी ने घर जाकर क्या किया तथा उसे जो रत्नों से भरा सन्दूक मिला था, वह किसका था ? तथा सहसा कहाँ से आ गया ? मेरी यह जिज्ञासा शान्त करने की कृपा कीजिए ।’

सूतजी ने कहा—‘शौनक ! तुमने अच्छा प्रश्न किया है । उस धनिक को जो रत्नादि धनों से भरा हुआ सन्दूक मिला था, वह भगवान् विजराज की कृपा ही थी । उन्होंने सुदामा को धन प्राप्त कराने के लिए ही वह धन वहाँ सहसा उत्पन्न कर दिया था ।

‘अब उस वैश्य का वृत्तान्त सुनो—वह कछुभुज नामक नगर का निवासी था और व्यापार के उद्देश्य से ही परदेश में गया था । उसने अपने नगर में लौटकर भगवान् विजराज का पूजनोत्सव बड़े समारोह से किया, जिसमें नगर के प्रतिष्ठित व्यापारी, अधिकारी एवं उसके बहुत से बान्धव आमन्त्रित किए गए । अनेकों वेदज्ञ ब्राह्मणों ने उस पूजन कर्म में योग दिया । उस धनिक ने ब्राह्मण-भोजन कराके प्रचुर धन दाने-दक्षिणां में दिया ।

वैश्य के एक परम मित्र थे राजा के प्रधान अमात्य चित्रबाहु । वे भी प्रसाद-ग्रहणार्थ बुलाये गये थे । प्रसाद ग्रहण के बाद चित्रबाहु के द्वारा

यात्रा के कुशलता से पूर्ण होने की बात पूछने पर उसने धन के चोरी जाने और प्रभु कृपा से अन्य रत्न-राशि प्राप्त होने की बात सुनाई। इसके पश्चात् उत्सव का आयोजन सम्पन्न हुआ।

एक दिन कुछ लोग चित्रबाहु के पास जाकर विक्रयार्थ रत्नादि दिखाने लगे तो चित्रबाहु ने रत्नों के असली होने की परीक्षा के लिए अपने मित्र वैश्य को बुलाया। उसने रत्नों को देखकर पहचान लिया कि वह वही रत्न हैं जो मेरे पास से चोरी गए थे और यह बात उसने सबके सामने चित्रबाहु से कह दी।

तब चित्रबाहु ने रत्न लाने वालों से कहा, 'बताओ, तुम्हें यह रत्न कहाँ से प्राप्त हुए ?' पहिले तो उन्होंने कुछ उल्टी-सीधी बातें बनाई, किन्तु जब उन्होंने चित्रबाहु के आदेश पर अपने को राजसैनिकों से घिरे पाया तो रोते हुए बोले—

'प्रधान जी ! हमारा अपराध क्षमा कर दें तो हम अभी सब बात बताते हैं।' चित्रबाहु ने कहा कि सत्य कहोगे तो क्षमा कर दिए जाओगे। तब उन्होंने स्वीकार किया कि मार्ग में उस वैश्य से ही यह धन चुराया था। इसके पश्चात् उन्होंने वह धन वैश्य को लौटा दिया।'

चित्रबाहु ने उन चोरों से कहा—'देखो, यह भगवान् गणेश्वर का ही प्रभाव है जो तुम लोग धन लेकर यहाँ खिंचे चले आए हो। यदि सुख-समृद्धि चाहते हो तो चोरी का धन्धा छोड़कर अन्य कार्य में लगो और भगवान् गणाध्यक्ष का व्रत, पूजनादि करो तो तुम्हें सहज ही समस्त धन प्राप्त हो जायेंगे।'

यह सुनकर चोरों ने भविष्य में चोरी न करने की प्रतिज्ञा की और संकल्प किया कि हम उन्हीं विनायक की आराधना करते हुए धर्मपूर्वक जीवन-यापन करेंगे। इस प्रकार वे चोर सदाचारी बनकर भगवान् गणेश्वर की आराधना करने लगे जिससे उन्हें सर्व सुखों की प्राप्ति हुई।

वह वैश्य भी चोरी का धन वापस लौट आने पर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और गणेश्वर की पूजा करने लगा ।

## भगवान् विनायक की कृपा चित्रबाहु पर

सूतजी बोले—हे शौनक ! चित्रबाहु ने गणेश-व्रत का ढृढ़ संकल्प किया । किन्तु बाद में पुत्र-प्राप्ति होने पर अपने संकल्प को भूल गया । इस कारण उसपर संकट के मेघ मँडराने लगे और एक दिन सहसा राजा ने किसी कारण कुपित होकर उसका सर्वस्व छीन लिया और देश निकाला दे दिया । इस कारण उनके पास जीवन-यापन का कोई भी साधन नहीं रहा । जब भूखों मरने की नौबत आ गई तो नर्मदा के तट पर भीख माँगने लगा ।

तभी एक दिन उसने शुक्रदेव जी का आश्रम देखा तो भीतर जाकर महर्षि को प्रणाम कर बैठ गया । महर्षि ने पूछा—‘तुम कौन हो ? कहाँ से आये हो ? क्या प्रयोजन है तुम्हारा ?’

यह सुनकर चित्रबाहु ने अपना समस्त वृत्तान्त निवेदन किया और अपने संकट से मुक्त होने का उपाय पूछा ।

महर्षि ने कुछ देर ध्यान लगाने के बाद कहा—‘वत्स ! तुमने पुत्र-प्राप्ति के लिए भगवान् विनायक के व्रत का संकल्प किया था, जिसे पुत्र उत्पन्न होने पर तुम भूल गये । इसी कारण तुम्हें यह घोर कष्ट भोगना पड़ रहा है । इस स्थिति में छुटकारा पाने के लिए उन्हीं भगवान् विनायक का व्रत और पूजन करो, फिर तुम्हें कोई कष्ट नहीं रहेगा और तुम अपने पूर्व को भी पा लोगे ।’

हे शौनक ! शुक्रदेव मुनि की बात सुनकर चित्रबाहु को अपनी भूल पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ और उसने तुरन्त ही विनायक भगवान् के व्रत का संकल्प कर गणेश-चतुर्थी के शुभ दिवस में गणेशजी का भक्तिभाव

से पूजन किया, जिसके प्रभाव से उसे पूर्व पद और वैभव की शीघ्र प्राप्ति हो गई।



१६

## १०. दशम अध्याय

### पति-परित्यक्ता रानी मुनीता का आख्यान

सूतजी बोले—‘हे शौनक ! एक दिन फल्गुन नदी के तट पर गणेश-पूजन किया जा रहा था । पूजन करा रहे थे महाज्ञानी एवं वेदज्ञ भार्गव पण्डित । उसी समय उन्होंने देखा कि एक स्त्री वहाँ आकर खड़ी हो गई है । देखने में वह किसी बड़े घर की है, किन्तु मुख पर उदासी और चिन्ता के भाव थे तथा आँखें ऐसी हो रही हैं, जैसे रो चुकी हों ।

ऋषि को उसकी दीनता देखकर दया आ गई और वे बोले—‘महाभाग ! तुम कौन हो और कहाँ से और क्यों आई हो ? यदि कुछ अभीष्ट हो तो बताओ । भगवान् विनायक उसे पूर्ण करने में समर्थ हैं ।’

उस स्त्री ने रोते हुए कहा—‘मुनीश्वर ! मैं मालवदेश के महाराज चन्द्रसेन की पत्नी हूँ । यद्यपि महाराज अत्यन्त धर्मज्ञ, नीतिज्ञ और परम बल-वैभव सम्पन्न हैं और मुझपर प्रेम भी बहुत करते थे, किन्तु मेरे कोई सन्तान न होने के कारण उन्होंने मेरी ही अनुमति से दूसरा विवाह कर लिया ।

‘फिर तो वे उसी के प्रेम में आसक्त रहकर मेरा तिरस्कार करने लगे । मेरी सौत ने तो मुझे दासी से भी बुरी अवस्था में डाल दिया । फिर उसके एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम पद्मसेन रखा गया । उसके समस्त संस्कार विधिवत् हुए और विद्याध्ययन के पश्चात् मद्रदेश की राजकुमारी से उसका विवाह भी हो गया ।

हे मुनिनाथ ! फिर मेरे पति समस्त परिवार के सहित गया मैं पिण्ड-दानार्थ आये और आज समस्त धर्म-कार्य सम्पन्न होने पर थके होने के कारण पलँग पर सो गये । मैं उनकी सेवाशुश्रूषा में लगी थी तभी मेरी सौत वहाँ आई और उसने मुझे अनेक गालियाँ दीं तथा लात-घूसों से प्रहार किया । तब मैं अपमान न सहन करने के कारण आत्महत्या के विचार से शिविर छोड़कर यहाँ चली आई और नर्मदा में कूदना चाहती थी कि कुछ मन्त्र-ध्वनि सुनकर और पूजनादि होते देखकर यहाँ चली आई । अब आप मुझे यह बतायें कि आप किस देवता का पूजन कर रहे हैं ? क्या इसे करने से मेरा भी दुःख दूर हो सकेगा ?'

महर्षि ने उसकी बात सुनकर करुण दृष्टि से देखते हुए कहा—‘रानी ! भगवान् विघ्नेश का पूजन कर रहे हैं । यह प्रभु समस्त विघ्नों को दूर कर सभी अभीष्टों के पूर्ण करने में समर्थ हैं । तुम इन्हीं विघ्नराज का पूजन करोगी तो तुम्हारे कष्ट शीघ्र दूर हो जायेंगे ।’

यह कहकर मुनि ने उसे बैठने का संकेत किया और पूजन समाप्त होने पर प्रसाद दिया । तब रानी गणेश-पूजन का संकल्प करके उन्हीं का स्मरण करती हुई अपने स्थान को लौट गई ।

## रानी सुनीता को सर्वसुख प्राप्ति का वृत्तान्त

शौनक बोले—‘हे सूतजी ! फिर उस रानी ने क्या किया ? शिविर में लौटने पर उसका पुनः अपमान तो नहीं हुआ ? उसने गणेश-पूजन किया या नहीं ? यदि किया तो उसका क्या फल हुआ ? यह सब वृत्तान्त मेरे प्रति कहने की कृपा कीजिए ।’

सूतजी ने कहा—‘शौनक ! रानी सुनीता का अगला वृत्तान्त पार्वती के पूछने पर शिवजी ने इस प्रकार बताया कि रानी अपने शिविर में जाकर सो गई । उसके आत्मधात के लिए जाने आदि का बात का किसी को भी पता न चला । महाराज चन्द्रसेन जब अपने राज्य में लौट आये, तब उनके

विचार ने पलटा खाया और उन्होंने सोचा कि बड़ी रानी को सन्तान नहीं हुई तो इसमें उसका क्या दोष है ? वह तो अब तक अपने पातिक्रत-धर्म का निर्वाह करती चली आ रही है । इसलिए उसके प्रति छोटी रानी का व्यवहार अनुचित और अन्यायपूर्ण है ।' ऐसा सोचकर वह रानी सुनीता का आदर करने लगे ।

भगवान् गणेश्वर के व्रत-विषयक संकल्प का ऐसा प्रभाव देखकर सुनीता उनका पूजन करने के लिए तत्पर हुई और व्रत रखकर विधिपूर्वक राजगुरु भारद्वाज के द्वारा पूजन-कार्य सम्पन्न कराया । उसने पूजन के लिए महाराज को बुलाया तो उन्होंने छोटी रानी मदनावती को भी सुनीता के भवन में चलने को कहा । किन्तु मदनावती ईर्ष्या के कारण महाराज के साथ न गई और वे अकेले ही वहाँ पहुँचे ।

हे शौनक ! रानी सुनीता ने अपने पति को आये देखा तो बड़ी प्रसन्न हुई । उसने इसे गणेशजी की ही कृपा माना । फिर उसने पति के साथ बैठकर भगवान् विजराज का भक्तिभाव से पूजन किया और स्तुति, आरती, प्रदक्षिणादि के पश्चात् महर्षि भारद्वाज और अन्य ब्राह्मणों को भोजन और दक्षिणा से सन्तुष्ट किया ।

रानी सुनीता के यहाँ व्रतोत्सव मनाये जाने और पतिदेव के उसमें भाग लेने के कारण रानी मदनावती रुष्ट हो गई और महाराज का भी तिरस्कार कर बैठी । तब तो महाराज उसका साथ छोड़कर रानी सुनीता के भवन में ही रहने लगे ।

कालान्तर में गणपति की कृपा से रानी गर्भवती हो गई । अब तो महाराज ने स्वयं ही प्रसन्नता के कारण सुनीता के भवन से श्रीविजेश्वर के पूजन का आयोजन किया और उसमें रानी मदनावती को भी बुलाया, किन्तु वह रुष्ट रहने के कारण नहीं आई ।

पूजन के पश्चात् महाराज स्वयं ही प्रसाद देने के लिए रानी मदनावती के महल में गये, किन्तु रानी ने प्रसाद नहीं लिया । राजा अपमानित होकर

बड़ी रानी के भवन में लौट आया। उधर मदनावती कुछिन हो गई, इस कारण राजा ने उसका परित्याग कर दिया।

इधर रानी सुनीता को पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। उसका जन्मोत्सव बड़ी ही धूमधाम से मनाया गया तथा उसके जातकर्म आदि सभी संस्कार समय-समय पर कराये जाते रहे और उस प्रसन्नता के कारण पुरोहित, ब्राह्मण, अतिथि आदि को पर्याप्त दान-दक्षिणाएँ दी गईं। बालक का नाम लक्षपद रखा गया।

अब मदनावती अत्यन्त दुःखित थी। जब उसे अन्य कोई उपाय न सूझा तो रानी सुनीता के पास जाकर बोली—‘बहिन ! मुझ पीड़ित पर कृपा करो, मैं तुम्हारी शरण हूँ।’ सुनीता को उसपर दया आ गई और उसने कहा—‘बहिन ! तुमने भगवान् विज्ञेश्वर का अपमान किया और उनका प्रसाद तक ठुकरा दिया था, इसी कारण तुम्हें इस घोर दुःख की प्राप्ति हुई है। अब तुम उन्हीं भगवान् का व्रत और पूजन करो।’

यह सुनकर उसने संकल्पपूर्वक भगवान् विनायक देव का व्रत और पूजन किया, जिसके प्रभाव से वह रोगमुक्त हो गई और पूर्व सम्मान को प्राप्त कर सकी। अब दोनों रानियाँ बड़े प्रेम से रहने लगीं तथा राजा के साथ गणपति पूजन करती हुई सुखपूर्वक जीवन बिताने लगीं। उस व्रत के प्रभाव से राजा सहित उन्हें गणराज के धाम की प्राप्ति हुई।



## देवताओं को वरदराज का दर्शन

सूतजी बोले—‘त्रिपुर-विजय के पश्चात् देवताओं ने श्रीगणेशजी का भक्तिभाव से पूजन किया। उसके पश्चात् भी वे समय-समय पर उनकी उपासना करके सिद्धि प्राप्त करते।’

हे शौनक ! एक समय पुनः ऐसा ही अवसर उपस्थित हो गया जब देवताओं से वरदराज रुच्छ हो गये और अपनी भूल ज्ञात होने पर उन्होंने पुनः उनको मनाया ।

शौनक ने भक्तिपूर्वक सूतजी के समक्ष मस्तक झुकाया और बोले—‘सूतजी ! हे पुराणदेवता पुरुष ! वरदराज की कथा में मुझे बड़ा आनन्द आ रहा है । देवताओं को पुनः किस विष्ण का सामना करना पड़ा और उन्होंने किस प्रकार छुटकारा पाया, वह सब मेरे प्रति कहने की कृपा कीजिए ।’

सूतजी बोले—‘हे शौनक जी ! वह कथा भी कहता हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो । देवगण एक बार गोमती के पवित्र तट पर यज्ञ करने लगे । किन्तु उस यज्ञ में अनेक विष्ण आने लगे । तब उन्होंने भगवान् विष्णु के पास जाकर निवेदन किया—हे बैकुण्ठनाथ ! हमारे यज्ञ में बार-बार विष्ण उपस्थित हो रहा है, उसके निवारण का उपाय बताइए ।’

भगवान् विष्णु ने हँसकर कहा—‘देवताओ ! तुमने गणेशजी का पूजन नहीं किया होगा, इसलिए वे रुच्छ हो गये होंगे । यदि विष्णों से बचना है तो सर्वप्रथम उनका पूजन करो और उसके पश्चात् यज्ञ करो । फिर कोई विष्ण उपस्थित नहीं होगा ।

भगवान् की बात सुनकर देवगण गोमती तट पर लौट गए और ब्रह्माजी के नेतृत्व में गणपति-पूजन करने लगे । उनके उस पूजन से वरदराज प्रसन्न हुए और उन्होंने देवताओं को साक्षात् दर्शन दिया । देवताओं ने उन्हें देखा तो तुरन्त ही हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे—

“यः सर्वकार्येषु सदासुराणामधीशविष्णवम्बुजसम्भवानाम् ।

पूज्यो नमस्यः परिचिन्तनीयस्तं विष्णराजं शरणं व्रजामः ॥”

‘जिनका सभी देवगण, शिव, विष्णु, ब्रह्मादि भी सब कार्यों में

पूजन, नमस्कार और चिन्तन करते हैं, हम उन्हीं विष्वराज गणेशजी की शरण लेते हैं। हे गणेशवर ! आपके समान मनोवाञ्छित फल प्रदान करने वाला अन्य कोई देवता नहीं है। त्रिपुरासुर वध के समय शिवजी ने आपका ही पूजन करके विजय प्राप्त की थी। हे अम्बिकानन्दन ! हमारे इस यज्ञ के विष्णों को दूर कीजिए।'

देवताओं द्वारा वरदराज के बाल रूप का स्मरण होने के कारण वे उन्हें बाल रूप में ही दिखाई देने लगे। यह देखकर शिवजी ने विनोदपूर्वक कहा—‘गणपति ! तुमने बहुत दूध पिया है, फिर लम्बोदर क्यों नहीं हो जाते ?’ सबके देखते-देखते वे लम्बोदर और दीर्घकाय हो गए। देवताओं ने पुनः उनकी स्तुति की और अन्त में बोले—‘हे लम्बोदर ! हे गणपते ! हम आपकी शरण हैं, हमारे विष्णों को नष्ट कर दीजिए।’

गणेशजी ने कहा—‘देवगण, चिन्ता न करो। अब तुम्हारे यज्ञ में कोई विष्ण उपस्थित न होगा। सभी बाधाओं का अन्त हो चुका है। अपना यज्ञ आरम्भ करो।’ यह कहकर वरदराज अन्तर्धान हो गये। देवताओं ने उनकी प्रतिमा स्थापित कर पुनः पूजन किया और पुष्पांजलि आदि द्वारा सन्तुष्ट करके यज्ञानुष्ठान का अभ्यास किया। इस बार उनके यज्ञ में कोई बाधा उपस्थित नहीं हुई।

यज्ञ के निर्विष्ण रूप से सम्पूर्ण होने पर देवताओं को बड़ी प्रसन्नता हुई और वे हर्ष-विभोर हृदय से विष्णनाशक वरदराज का जय-जयकार करने लगे।

## श्रीराधाजी ने गणपति की पूजा की

शौनकजी बोले—‘हे सूतजी ! आपने भगवान् वरदराज के पूजन का यह सुन्दर उपाख्यान सुनाया। इससे मैं बहुत ही आनन्दित हो रहा हूँ। अब इनकी अन्य कथाएँ सुनाने की कृपा कीजिए।’

सूतजी बोले—‘हे शौनक जी ! विघ्नराज का पूजन सभी युगों में और सभी विशिष्टजनों द्वारा होता आया है । देखो, एक बार भगवान् श्रीकृष्ण की योगमाया और प्रधान प्रियतमा श्रीराधाजी ने भी उनका पूजन किया था ।’

सूतजी बोले—‘देखो शौनक ! सिद्धाश्रम नामक सिद्धि क्षेत्र की महिमा संसार-प्रसिद्ध है । श्रीसनत्कुमार ने वहीं रहकर सिद्धि प्राप्त की थी । स्वयं ब्रह्माजी ने भी वहाँ तपस्या करके इच्छित वर प्राप्त किया था । इन्द्र भी वहाँ तप करके सिद्धि प्राप्त कर चुके हैं । वहाँ भगवान् गणपति का निवास है ।’

‘एक बार वैशाखी पूर्णिमा के पुण्य अवसर पर माता पार्वती और पिता महेश्वर के साथ गणेशजी सिद्धाश्रम में ही थे । उस अवसर पर ब्रह्मादि सभी देवगण, ऋषि-मुनिगण, चारण, सिद्ध-गन्धर्व आदि गणपति पूजन के लिए उपस्थित हुए थे ।

‘उसी पुण्य अवसर पर सब प्रमुख द्वारिकावासियों के साथ भगवान् श्रीकृष्ण और ब्रजवासियों के साथ नन्दजी भी वहाँ आये थे । गोलोकवासिनी गोपियों के साथ श्रीकृष्ण की प्राणवल्लभा श्रीराधाजी भी वहाँ आई थीं । उन्होंने स्नान करके शुद्ध वस्त्र धारण किए तदुपरान्त अपने चरणों को धोया और व्रतोपवास पूर्वक मणि-मण्डप में प्रविष्ट हुई ।

रासेश्वरी श्रीराधा को भगवान् श्रीकृष्ण की कामना थी—

इसलिए उन्होंने भगवान् की प्राप्ति करने के उद्देश्य से गजानन के पूजन का संकल्प लिया । श्रीगणपति का षोडशोपचारों से पूजन किया तथा इस प्रकार स्तुति करने लगीं—

“खर्व लम्बोदरं स्थूलं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ।

गजवक्त्रं वहिनवर्णमेकदन्तमनन्तकम् ॥

शरणागत दीनार्ति परित्राणपरायणम् ।

ध्यायेद् ध्यानात्मकं साध्यं भक्तेशं भक्तवत्सलम् ॥”

‘श्रीगजानन खर्व (लघुकाय), लम्बोदर, स्थूलकाय, ब्रह्मतेज से सम्पन्न, गजमुख, अग्नि के समान कांति वाले, एकदन्त तथा अनन्त हैं। जो शरणागत, दीन तथा आर्तजनों के दुःख दूर करने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं, उन ध्यानात्मक, साध्य, भक्तों के ईश्वर तथा भक्तवत्सल भगवान् गणपति का ध्यान करना चाहिए।’

इस प्रकार ध्यानादि करके श्रीराधाजी ने विधिवत् पूजन आरम्भ किया। शीतल तीर्थजल, दूर्वा, अक्षत, श्वेत सुरभित पुष्प, चन्दन युक्त सुगन्धित अर्घ्य, धूप, दीप, नैवेद्य, फल, अन्न, मोदक रूप विविध व्यञ्जन, रत्नसिंहासन, वस्त्र, आभूषण, मधुपर्क, ताम्बूल, शय्या आदि सामग्री के समर्पण द्वारा उनका षोडशोपचार पूजन किया और फिर निम्न मन्त्र का एक हजार बार जप किया—

ॐ गं गं गणपतये विघ्नविनाशिने स्वाहा ।

जप करने के पश्चात् उन्होंने दशांश हवन और ब्राह्मण भोजन कराया तथा उसके बाद राधाजी के नेत्र प्रभु वियोग में अश्रुपूर्ण हो गए। उन्होंने गदगद कण्ठ से गणेशजी का पुनः स्तवन किया—

“परंधाम परंब्रह्म परेशं परमीश्वरम् ।

विघ्ननिघ्नकरं शान्तं पुष्टं कान्तमनन्तकम् ॥

सुरासुरेन्द्र-सिद्धेन्द्रैः स्तुतं स्तौमि परात्परम् ।

सुरपद्मदिनेशं च गणेशं मङ्गलायनम् ॥”

‘जो भगवान् गणपति परमधामरूप, परमब्रह्म परेश, परमेश्वर, विघ्न-विनाशक, शान्त, पुष्ट, मनोहर और अनन्त हैं, तथा सुर, असुर, सिद्धेश्वर आदि जिनकी स्तुति करते हैं और जो देवतारूप कमल

के लिए सूर्यरूप मंगलों के घर हैं, उन परात्पर श्रीगणेशजी की मैं वन्दना करती हूँ।

इस प्रकार श्रीराधाजी ने विघ्नविनाशक स्तोत्र का उच्चारण करके गणेशजी को प्रणाम किया। तब उनकी स्तुति से प्रसन्न हुए विघ्नविनाशक श्रीगणेशजी प्रकट हो गये और उन्होंने श्रीराधा जी के प्रति कहा—‘हे जगज्जननि ! आप स्वयं ही ब्रह्मस्वरूपिणी हैं तथा जगदात्मा भगवान् श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल पर सदैव निवास करती हैं। वस्तुतः आपके द्वारा किया गया यह पूजन और स्तोत्र तो लोकशिक्षा के लिए हो सकता है। माता ! आपने जो-जो वस्तुएँ मुझे समर्पित की हैं, वे सब ब्राह्मणों को दे दीजिए। क्योंकि उन्हें देने से सभी वस्तुएँ अनन्त हो जाती हैं।’

श्रीगणेशजी का यह निर्देश सुनकर श्रीराधा जी ने वे सभी वस्तुएँ ब्राह्मणों को दे दीं। तत्पश्चात् वरदराज गणेश जी ने भोग लगाया और अभीष्ट पूर्ति का वर प्रदान करते हुए कहा—‘माता ! जिस कामना से आपने मेरा पूजन किया है, वह शीघ्र ही पूर्ण होगी।’

इस प्रकार वर देकर श्रीगणेशजी अन्तर्धान हो गये। तब रासेश्वरी ने वहाँ जाकर पुनः वरदराज का पूजन कर अभीष्ट प्राप्त किया। हे शौनक ! तुमने गणेशजी के विषय में पूछा वह मैंने बता दिया। अब और क्या सुनना चाहते हो ?’

शौनक जी उक्त कथा सुनते हुए अत्यन्त विस्मित और हर्षित हो रहे थे। उन्होंने सूतजी को पुनः प्रणाम किया और गद्गद कंठ से हाथ जोड़कर बोले—‘प्रभो ! मुझे उन महामहिम गणेश जी की वह कथा सुनाइए जिसमें उन्होंने चन्द्रमा को शाप दे दिया था।’



## श्रीगणेशजी द्वारा चन्द्रमा को शाप वर्णन

सूतजी बोले—‘शौनकजी ! सुनो, प्राचीन काल की बात है—कैलास-शिखर पर अनेक देव, दिव्य ऋषिगण, सिद्धगणादि के साथ चतुरानन ब्रह्माजी भी एक उच्च आसन पर विराजमान थे । वहाँ पर एक अन्य आसन पर भगवान् शंकर भी जगज्जननी उमा के सहित सुशोभित थे । उनके निकट ही गणपति और कुमार कार्तिकेय दोनों ही अन्य बालकों के साथ क्रीड़ा में मग्न हो रहे थे ।’

शिवजी के हाथ में एक दिव्य फल था । वे सोच रहे थे कि इसे किसे दिया जाये ? पार्वती जी से पूछा तो वे कभी कहतीं कि गणेश को दे दीजिए और कभी कहतीं-कुमार को देना उचित होगा । जब वे कुछ निश्चयात्मक उत्तर न दे पाईं तो शिवजी ने उसे बाद में विचार करने के उद्देश्य से अपने पास रख लिया ।

अब दोनों बालक—गणेश और कुमार उस फल की माँग करने लगे । जब उनका अधिक आग्रह बढ़ा तब शिवजी ने ब्रह्मा जी से पूछा—‘ब्रह्मन् ! यह अपूर्व फल देवर्षि नारदजी दे गये थे । इसे यह दोनों बालक माँग रहे हैं । फल एक ही है और आधा फल कोई लेना नहीं चाहता । ऐसी स्थिति में आप ही निर्णय कीजिए कि यह इनमें से किसे दिया जाय ?’

चतुरानन विचार कर बोले—‘यदि फल एक ही है तो नियमानुसार कुमार को दिया जाना चाहिए । क्योंकि किसी भी वस्तु पर बड़े बालक का अधिकार पहिले पहुँचता है ।’

ब्रह्माजी की बात सुनकर शिवजी ने वह फल कुमार को दे दिया । यह देखकर गणपति रुष्ट हो गये, विशेष कर उनका क्रोध चतुरानन पर ही था कि उन्होंने ऐसी व्यवस्था क्यों दे डाली ?

सभा समाप्त हुई। सभी देवता आदि उठ-उठ कर अपने-अपने स्थानों को चले गये। ब्रह्माजी भी अपने लोक में जा पहुँचे। वहाँ उन्हें सूष्टि का आरम्भ करना था। किन्तु, जैसे ही वे सर्गरचना में लगे, वैसे ही गणेश्वर ने विष्णु उपस्थित कर दिया। उस समय उन्होंने प्रकट होकर अपना अत्यन्त उग्र रूप दिखाया। उनके उस रूप को देखकर ब्रह्माजी डर के कारण काँपने लगे।

चन्द्रमा ने देखा कि गणपति के उग्ररूप को देखकर ब्रह्माजी भय से काँप रहे हैं, तो उसे हँसी आ गई। उसके साथ ही चन्द्रमा के जो गण उस दृश्य को देख रहे थे, वे भी हँस पड़े। यह देखकर भगवान् गजानन को क्रोध आ गया और वे चन्द्रमा को शाप देते हुए बोले—‘मयङ्क ! तूने इस समय मेरी हँसी उड़ाकर जो अभद्रता प्रदर्शित की है, उसका फल तुझे मिलना ही चाहिए। जा तू किसी के भी देखने के योग्य नहीं रहेगा और यदि कोई भूल से भी देख लेगा तो अवश्य ही पाप का भागी होगा।’

इतना कहकर गजमुख अन्तर्धान हो गये। उनका शाप प्राप्त होते ही चन्द्रमा श्रीहत मलिन एवं दीन हो गया। उनके तेज में अत्यन्त न्यूनता आ गई। इससे वह बहुत व्याकुल हुआ और खिन्नतापूर्वक पश्चात्ताप करने लगा—‘देखो ! मैं कैसी मूर्खता कर बैठा, उन जगदीश्वर के साथ। वे प्रभु तो अणिमादि गुणों से सम्पन्न, संसार के कारण के भी कारण एवं महाप्रभु हैं। उनके रुष्ट होने से मैं अदर्शनीय एवं कलाहीन हो गया हूँ। अब इससे छुटकारा पाने के लिए क्या करूँ ?’

जब चन्द्रमा की समझ में कोई उपाय नहीं आया तो वह तुरन्त ही देवराज इन्द्र के पास गया। परन्तु इन्द्रादि देवता भी उसे नहीं देखना चाहते थे। उन सभी ने अपनी-अपनी आँखें झुका लीं। तब इन्द्र ने भी उसकी ओर न देखते हुए ही पूछा—‘अरे, चन्द्रमा ! तुम्हारी यह दशा कैसे हुई ? क्या गजकर्ण के शाप का ही प्रभाव है यह ? सब बात स्पष्ट कहो।’

चन्द्रमा बोला—‘देवराज ! आपसे क्या छिपा है ! सब कुछ जानते हुए

भी अनजान बनकर क्यों पूछ रहे हो ? सहस्राक्ष ! अब शीघ्र ही मेरे शाप-मुक्त होने के यत्न करो, अन्यथा समस्त संसार ही मेरे शापित होने से अशुभ फल भोगेगा ।'

इन्द्र ने सान्त्वना दी और बोले—‘चलो ब्रह्माजी से ही इसका उपाय पूछें । क्योंकि उनके समान ज्ञानी और सर्व लोकोपकारी अन्य कोई भी नहीं है ।’

सब देवता उसके साथ ब्रह्मलोक पहुँचे । आगे-आगे चन्द्रमा और पीछे-पीछे इन्द्र के नेतृत्व में सब देवगण । ब्रह्माजी ने जब यह जाना कि चन्द्रमा आ रहा है तो पाप लगने के भय से उन्होंने भी दृष्टि नीची कर ली और बोले—‘कहो सुधांशु ! यहाँ किस अभिप्राय से आना हुआ ? अरे, तुम्हारे पीछे तो देवराज इन्द्र और समस्त सुरगण ही चले आ रहे हैं !’

ब्रह्माजी के प्रश्न का उत्तर सुरपति ने ही दिया । वे बोले—‘ब्रह्मन् ! भगवान् गणेश्वर आप पर कुपित हुए थे और शाप दे बैठे चन्द्रमा को । इसलिए अब आप ही इसे छुड़ाने का कुछ उपाय कीजिए । हम सभी देवता इसी प्रयोजन से आपकी सेवा में उपस्थित हुए हैं ।’

चतुरानन ने कुछ विचार कर कहा—‘उन्हीं गणेश्वर प्रभु की शरण लेनी होगी, देवराज ! चन्द्रमा को आगे रखकर उन्हीं का पूजन एवं स्तवन करो ।’

## चन्द्रमा के ऊपर गणेश्वर की कृपा

ब्रह्माजी की बात सुनकर भगवान् गजानन के पूजन की तैयारी की गई । गणेश्वर की प्रतिमा बनाकर षोडशोपचार पूजन एवं भावनापूर्वक स्तुति कर निवेदन किया गया—‘प्रभो ! इस चन्द्रमा पर कृपा कीजिए, उस समय यह अज्ञानवश हँस पड़ा था, किन्तु अब इसे अपनी मूर्खता का ज्ञान हो गया है नाथ !’

देवताओं की प्रार्थना पर भगवान् गणेश्वर प्रकट हो गए। सभी ने उनका अद्भुत रूप देखकर उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। तब गणपति प्रसन्न होकर बोले—‘देवगण ! मैं सन्तुष्ट हूँ, अतएव जो चाहो वह अभीष्ट वर माँग लो।’

चन्द्रमा ने उनके चरणों में मस्तक रख दिया और अश्रुजल से पदारविन्दों को धोने लगा। गणेश्वर बोले—‘उठ, उठ ! चन्द्रमा ! अब संताप न कर, मैं तुझपर प्रसन्न हूँ।’

चन्द्रमा ने कहा—‘प्रभो ! मुझे शाप-मुक्त कीजिए। मेरी कांति नष्ट हो गई है उसे लौटा दीजिए। मैं अदर्शनीय से दर्शनीय हो जाऊँ नाथ ! मेरे अपराध को क्षमा कर दीजिए भक्तवत्सल।’

गजकर्ण बोले—‘अच्छा, बोल तुझे एक वर्ष, छः मास अथवा तीन मास के लिए अदर्शनीय रहने दिया जाय अथवा कुछ और चाहता है ? शीघ्र ही स्पष्ट बता।’

चन्द्रमा ने कहा—‘प्रभो ! मुझे बहुत दण्ड मिल गया है। अब तो क्षमा कर दीजिए।’ यह कहकर उसने पुनः दण्डवत् प्रणाम किया तथा सब देवता भी उनके चरणों में झुक गये।

गणेश्वर ने मुस्कराते हुए कहा—‘मैं अपने वचन को मिथ्या कैसे करूँ ? चाहे सूर्य और सुमेरु अपना स्थान त्याग दें, समुद्र अपनी मर्यादा छोड़ दे अथवा अग्नि शीतल हो जाये, किन्तु मेरा वचन मिथ्या नहीं हो सकता। फिर भी मैं तुम्हें वर्ष में एक ही दिन के लिए शापित रखूँगा तथा—

“भाद्रशुक्लचतुर्थ्या यो ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा ।

अभिशापो भवेच्यन्द्र दर्शनाद् भृशदुःखभाक् ॥”

‘जाने या अनजाने में भी जो कोई भाद्रपदशुक्ल चतुर्थी को चन्द्रमा को देखेगा वही अभिशाप्त होगा और वही अधिक दुःख का भागी होगा इसमें कोई सन्देह नहीं।’

भगवान् हेरम्ब के इन कृपापूर्ण वचनों को सुनकर चन्द्रमा बहुत प्रसन्न हुआ तथा समस्त देवगण भी उनका जय-जयकार करने लगे। चन्द्रमा ने पुनः निवेदन किया—‘प्रभो ! भविष्य में मुझसे इस प्रकार की मूर्खता न हो और मेरा चित्त आपके चरण-कमलों के स्मरण में लगा रहे, ऐसा वर मुझे प्रदान करें।’

गणेश्वर ने प्रसन्न होकर कहा—‘ऐसा ही होगा। परन्तु मेरे एकाक्षरी मन्त्र ‘गं’ का जप करते रहना। यह कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये और तब समस्त देवता स्वर्गलोक को गये तथा चन्द्रमा भी अपने लोक में जा पहुँचा।

चन्द्रमा ने बारह वर्ष तक तपश्चर्या की और गणेश्वर के एकाक्षरी मन्त्र ‘गं’ का निरन्तर जप करते रहे। पवित्र जाह्नवी के तट पर भक्तिपूर्वक, एकाग्र मन से उनका यह तप चलता रहा था। तभी सहसा एक दिन वे परम प्रभु चन्द्रमा के समक्ष प्रकट हो गए। इस समय उनकी रूप-छटा देखकर निशापति अवाकृ रह गया। उसके चित्त में आश्चर्य मिश्रित भय की अवतारणा हुई। किन्तु शीघ्र ही उसे निश्चय हो गया कि वह साक्षात् आदिदेव भगवान् गजानन ही हैं, तो वह हाथ जोड़कर प्रणाम करता हुआ उनकी स्तुति करने लगा—

“नमामि देवं द्विरदाननं तं यः सर्वविघ्नं हरते जनानाम् ।  
धर्मार्थिकामांस्तनुतेऽखिलानां तस्मै नमो विघ्नविनाशनाय ॥”

‘मैं उन दो दाँतों से युक्त परमेश्वर को नमस्कार करता हूँ, जो अपने भक्तों के सभी विघ्नों का हरण करते तथा सभी के लिए धर्म, अर्थ और काम को प्रशस्त करते हैं। उन विघ्न-विनाशक परमात्मा गजानन को नमस्कार है। हे प्रभो ! मैंने अज्ञानवश जो अपराध किया था, उसे क्षमा करके मुझे मेरा पूर्व रूप प्रदान कीजिए। हे नाथ ! आप ही मुझे मेरा यह रूप प्राप्त करा सकते हैं। हे दयानिधान ! आप सभी देवताओं के

अधीश्वर, नित्य बोध स्वरूप एवं सत्य हैं। समस्त वेद आपके ही स्वरूप हैं तथा आपके द्वारा ही उनका प्रतिपादन हुआ है। हे देव ! यह ज.।। आपका ही स्वरूप है तथा आप ही साक्षात् परब्रह्म हैं।'

हे कृपानिधि ! विश्व की उत्पत्ति, पालन और प्रलय के भी आप ही एकमात्र कारण हैं। आपका तिरस्कार कोई नहीं कर सकता।'

भगवान् गजकर्ण ने चन्द्रमा की ओर कृपापूर्ण दृष्टि से देखा और मधुर मुस्कान बिखेरते हुए बोले—‘सुधांशु ! यह तो मैं पहिले ही कह चुका था कि तुम प्रत्येक वर्ष केवल एक दिन के लिए ही अदर्शनीय रहोगे। उस दिन तुम्हें जो कोई भी जाने-अनजाने देख लेगा वही बस अभिशाप का भागी बनेगा। इस प्रकार तुम्हारी निस्तेजस्तिता को ऐसे ही लोग बाँट लेंगे।

‘कृष्णपक्ष की चतुर्थी में जो व्रत किया जाय, उसमें तुम्हारा उदय होने पर व्रत करने वाले वे लोग यदि मेरी और तुम्हारी यत्पूर्वक पूजा करेंगे तो भी उस व्रत का फल लाभ होगा। उस दिन तुम्हारा दर्शन अवश्य करना चाहिए, अन्यथा व्रत का फल नहीं होगा।’

‘चन्द्रदेव ! तुम अब भविष्य में अपने एक अंश से मेरे मस्तक में विद्यमान हो जाओ। इससे मुझे तो प्रसन्नता होगी ही, तुम्हारी भी शोभा होगी। प्रत्येक मास की शुक्लपक्ष की द्वितीया में तुम्हारे दर्शन का बड़ा महत्त्व रहेगा तथा उस दिन अधिकांश स्त्री-पुरुष तुम्हारे दर्शन का पुण्य-लाभ करते हुए तुम्हें नमस्कार किया करेंगे। मैं वर देता हूँ कि अब तुम पूर्ववत् तेजस्वी, सुन्दर एवं वन्दनीय हो जाओ।’

‘शौनक ! इस प्रकार वर देकर भगवान् गजानन अन्तर्हित हो गये तथा चन्द्रमा अपना पूर्व तेज प्राप्त करके प्रसन्न हो गया। इस प्रकार भगवान् गजकर्ण का यह अत्यन्त महिमायुक्त उपाख्यान मैंने तुम्हें सुना दिया। बोलो, अब और क्या सुनना चाहते हो ?’



## द्वितीय खण्ड

१५

### १. प्रथम अध्याय

## गणपति का चरित्र कथन कल्पभेद से

शौनक जी ने निवेदन किया—‘भगवान् सूतजी ! कल्पभेद से श्रीगणेश्वर के अनेकानेक चरित्र कहे जाते हैं। आप उन सभी के पूर्ण ज्ञाता एवं वर्णन करने में समर्थ हैं। हे प्रभो ! मैं उन चरित्रों को विस्तार सहित सुनना चाहता हूँ। इसलिए ऐसी कृपा कीजिए कि मैं उनका श्रवणानन्द प्राप्त कर सकूँ।’

सूतजी बोले—‘शौनक ! तुम धन्य हो, जो भगवान् विनायक के चरित्र श्रवण में इतने उत्सुक हो रहे हो। मैं तुम्हारी इच्छा अवश्य पूर्ण करूँगा। अब मैं श्वेतकल्प में हुई गणेशोत्पत्ति की कथा तुम्हें सुनाता हूँ—ध्यान से सुनो।’

‘भगवती पार्वती की दो सखियाँ थीं : जया और विजया। वे दोनों अत्यन्त रूपवती, गुणवती, विवेकमयी और मधुरहासिनी थीं, पार्वती उनका बहुत आदर करती थीं। एक दिन उन सखियों ने उनसे निवेदन किया—‘सखि ! अपना कोई गण नहीं है, इसलिए एक गण तो अवश्य होना ही चाहिए।’

उमा ने आश्चर्यपूर्वक कहा—‘क्या कह रही हो सखियो ? हमारे पास करोड़ों गण हैं, जो तुरन्त आज्ञा पालन में तत्पर रहते हैं। फिर किसी अन्य गण की क्या आवश्यकता है ?’

सखियों ने कहा—‘सभी गण आशुतोष भगवान् के हैं। उन्हीं की आज्ञा उनके लिए प्रमुख है। नन्दी, भृङ्गी आदि गण जो हमारे कहलाते हैं, वे भी भगवान् की आज्ञा ही सर्वोपरि मानते हैं। यदि आप कोई आदेश

दें और शिवजी उसकी उपेक्षा करें तो आपके आदेश को कोई भी गण नहीं मानेगा । आप पूछेंगी तो अवश्य ही कोई बहाना बना दिया जायेगा ।'

पार्वती ने कुछ सोचा और फिर कहा—‘और यह असंख्य प्रमथगण, क्या इनमें भी कोई मेरी आज्ञा की उपेक्षा कर सकता है ?’

सखियाँ बोलीं—‘प्रमथगण में तो कोई हमारा है ही नहीं, वे सभी भगवान् रुद्र के व्यक्तिगत सैनिक हैं । शिवजी की अनन्यता के कारण ही वे शिवजी की आज्ञा से हमारी रक्षा करने और हमारे कार्यकलापों पर दृष्टि रखने के उद्देश्य से ही नियुक्त हैं इसलिए कृपा कर अपने लिए भी एक व्यक्तिगत गण की रचना अवश्य कीजिए ।’

पार्वती ने उनका सुझाव स्वीकार तो कर लिया, किन्तु कार्यरूप में अभी परिणत नहीं किया था । बात वहीं की वहीं रह गयी और कुछ दिन बीतते वे उसे भूल गयीं ।

एक दिन प्रातःकाल का समय था । पार्वती जी स्नानागार में स्नान करने जा रही थीं, उन्होंने नन्दी को आदेश दिया—‘कोई आवे तो उसे रोक देना ।’ और तब वे भीतर चली गईं ।

तभी भगवान् शङ्कर कहीं से आकर भीतर प्रविष्ट होने लगे । नन्दीश्वर ने उन्हें रोकते हुए निवेदन किया—‘अभी माता जी स्नान कर रही हैं, इसलिए यहीं ठहरने की कृपा करें ।’

शिवजी बोले—‘अरे, करने दे स्नान, मुझे एक आवश्यक कार्य है तो यहाँ कैसे रुका रहूँ ?’ यह कहते हुए लीलावपु परम-शिव नन्दी के बचनों की उपेक्षा कर सीधे स्नानागार में जा पहुँचे ।

## गणेश्वर गणपति की प्राकट्य-कथा

भगवान् आशुतोष को शीघ्रता से आये देखकर स्नान करती हुई जगज्जननी लज्जावश अत्यन्त सिमट गई । शिवजी भी बिना कुछ कहे

चले गये । इधर पार्वतीजी स्नानोपरान्त वस्त्र धारण करती हुई सोचने लगीं—जया-विजया का सुझाव उचित ही था । मैंने व्यर्थ ही उसकी उपेक्षा की । यदि द्वार पर मेरा कोई निजी गण उपस्थित होता तो शिवजी को स्नानागार में सहज ही नहीं आने देता ।

नन्दी ने मेरे वचनों की उपेक्षा की । इससे प्रतीत होता है कि इन गणों पर मेरा पूरा अधिकार नहीं है । इसलिए मेरा निजी गण अवश्य होना चाहिए । क्योंकि वह पूर्ण रूप से मेरी आङ्गा में रहेगा । अब जो गण हैं, वे शिवजी की आङ्गा से ही मेरी आङ्गा मानते हैं, किन्तु मेरा निजीगण मेरी आङ्गा से ही उनकी आङ्गा मानेगा ।

ऐसा विचार कर उन्होंने अपने अत्यन्त पवित्र देह की मैल उतारीं और उससे एक चेतन पुरुष की रचना कर डालीं—

“सर्वावयवनिर्दोषं सर्वावयव-सुन्दरम् ।

विशालं सर्वशोभाद्यं महाबलपराक्रमम् ॥”

‘वह पुरुष सभी शुभ लक्षणों से सम्पन्न, समस्त अवयवों से दोष रहित, अत्यन्त सुन्दर अङ्ग वाला, विशालकाय, अद्भुत शोभामय और महाबली एवं पराक्रमी था ।’

पार्वती जी ने तुरन्त ही अनेक प्रकार के दिव्य वस्त्राभूषण धारण कराये और शुभ आशीर्वाद देती हुई बोलीं—

‘वत्स ! तू मेरा ही पुत्र है, मेरा हृदय-रूप होने के कारण मेरा ही है । तुझसे अधिक प्रिय अन्य कोई नहीं है ।’

तब उस पुरुष ने अत्यन्त आदरपूर्वक जग्जननी के चरणों में मस्तक रखकर प्रणाम किया और फिर हाथ जोड़कर बोला—‘जननी ! मैं आपका ही हूँ, आपका ही रहूँगा । सदैव आपकी आङ्गा पालन करूँगा । अब आपकी क्या इच्छा है, उस विषय में आदेश दीजिए । आपके द्वारा निर्दिष्ट प्रत्येक कार्य करने के लिए मैं प्रस्तुत हूँ ।’

पार्वती बोलीं—‘पुत्र ! तुम्हें मेरी आज्ञा से भिन्न किसी की भी आज्ञा नहीं माननी है। तुम मेरे द्वारपाल रूप में रहो और कोई भी कहीं से भी आया हो, उसे मेरे अन्तःपुर में तब तक न आने दो जब तक मेरा आदेश प्राप्त न कर लो। इस विषय में तुम्हें सदैव सतर्क रहना होगा।’



20

## २. द्वितीय अध्याय

### गणपति का शिवगण से युद्ध वर्णन

यह कहकर पार्वती जी ने अपने पुत्र के मस्तक पर हाथ फेरा और उसके हाथ में एक दिव्य छड़ी दे दी। इस समय वह अत्यन्त सुन्दर और शोभा सम्पन्न प्रतीत हो रहा था, इसलिए पार्वती जी उसे देखकर आनन्द में अत्यन्त निमग्न हो गयीं। फिर उसको दुलारकर द्वार पर नियुक्त कर दिया।

बालक गणेश छड़ी लिये हुए द्वार पर डट गये। इधर पार्वती जी अपनी सखियों सहित स्नानागार में जाकर स्नान करने लगीं। इसी समय द्वार पर उनका निजी द्वारपाल नियुक्त था, इसलिए किसी के आने की उन्हें चिन्ता नहीं थी।

तभी भगवान् भूतभावन द्वार पर पथारे और शीघ्रता से भीतर प्रविष्ट होने लगे। उन्हें यह भी ध्यान नहीं था कि द्वार पर कोई शिवगण नहीं, पार्वती-पुत्र खड़ा है। वे उनसे परिचित भी नहीं थे, इसलिए समझा—अपने गणों में कोई खड़ा होगा।

शिवजी को गृह में प्रविष्ट होने की चेष्टा करते देखकर गणपति ने उन्हें रोकते हुए पूछा—‘देव, यह माता पार्वती जी का निजी भवन है। इसमें

प्रवेश के लिए उनकी आज्ञा लेना अनिवार्य है। आप बिना आज्ञा कहाँ जा रहे हैं ?'

तब चन्द्रमौलि का ध्यान उसकी ओर गया और वे बोले—‘मूर्ख ! तू कौन है ? किसे रोकने की चेष्टा करता है ? हट आगे से, मुझे भीतर जाने दे ।’

गणेश ने कहा—‘माताजी स्नान कर रही हैं, जब वे वस्त्रादि धारण कर लें तभी उनसे आपके भीतर जाने सम्भव्यी आज्ञा ली जा सकेगी । तब तक आप यहीं कहीं ठहर जायें अथवा पुनः आने का कष्ट करें ।’

त्रिलोचन को व्यवधान अच्छा न लगा, बोले—‘अरे, तू मुझे जानता नहीं, पार्वती का स्वामी और तीनों लोकों का ईश्वर साक्षात् शिव हूँ । अतएव मार्ग छोड़कर खड़ा हो ।’

गणपति ने मार्ग पूर्णरूप से रोक लिया और बोले—‘देव ! आप कोई भी क्यों न हों, जब तक माताजी की आज्ञा न होगी तब तक आपको भीतर नहीं जाने दूँगा ।’

यह कहकर बालक ने हाथ की छड़ी आड़ी कर ली । शिवजी को उसकी दृढ़ता देखकर आश्चर्य हुआ, बोले—‘तू तो अत्यन्त बुद्धिहीन प्रतीत होता है रे ! तू कौन है जो मुझे मेरे ही घर में जाने से रोकता है ? अब तू तुरन्त ही मार्ग छोड़कर दूर हो जा ।’

यह कहते हुए शिवजी ने पुनः भीतर जाने का उपक्रम किया । किन्तु मातृभक्त गणेश ने उन्हें पुनः छड़ी से रोक दिया । यह देखकर शिवजी को बड़ा क्रोध आया, किन्तु अपने क्रोध को दबाकर वे वहाँ से एक ओर हटकर सोचने लगे—यह है कौन जो मेरे मार्ग को रोके हुए खड़ा है ? इस जानकारी के लिए गणों को इसके पास भेजना चाहिए ।

उन्होंने गणों को आज्ञा दी—‘तुम लोग उस बालक से पूछो कि वह कौन है ? कब कहाँ से आ गया और किसके आदेश से द्वार-रक्षक के रूप में खड़ा है ?’

शिवगणों ने पार्वती-पुत्र के पास जाकर वही प्रश्न दुहरा दिये । साथ ही बोले—‘देखने में तुम बहुत ही सुन्दर और कोमल शरीर के बालक हो । बड़ों की आज्ञा मानने में ही बालक का कल्याण निहित है । अतः यहाँ से तुरन्त चले जाओ ।’

पार्वतीनन्दन ने भी वही प्रश्न किया—‘तुम लोग कौन हो ? कहाँ से आये हो और मुझे अकारण ही छेड़ने का प्रयोजन क्या है ? अधिकारी पुरुषों की आज्ञा मानने में ही सेवकों का कल्याण निहित है । इसलिए तुम अविलम्ब यहाँ से चले जाने की कृपा करो ।’

गणपति की बात सुनकर शिवगणों को हँसी आ गई, बोले—‘तुम बड़े विचित्र जीव हो, हमने जो कहा वही तुमने कह दिया ।’ फिर कुछ कठोर होकर बोले—‘तुम्हारा भला इसी में है कि यहाँ से अन्यत्र चले जाओ । पार्वतीपति भगवान् शङ्कर की आज्ञा है । अभी तक तुम्हें अपने ही समान गण समझकर हमने कोई कठोर व्यवहार तुम्हारे साथ नहीं किया है, यदि नहीं मानोगे तो तुम्हें मारने के लिए विवश होना पड़ेगा ।’

गणेश भी हँस पड़े, बोले—‘मैं माता पार्वती का पुत्र हूँ, उन्हीं ने मुझे इस स्थान पर नियुक्त किया है और आदेश दिया है कि मेरी आज्ञा के बिना किसी को भी भीतर न आने देना । यदि तुम अपने स्वामी की आज्ञा से मुझे हटाना चाहते हो तो मैं अपनी माता की आज्ञा के कारण यहाँ से नहीं हट सकता । तुम और तुम्हारे स्वामी चाहें तो यहाँ खड़े रह सकते हैं, किन्तु भीतर प्रविष्ट नहीं हो सकते ।’

शिवगण समझ गये कि यह महाशक्ति का अत्यन्त शक्तिमान् पुत्र है, इसलिए यह अपने स्थान से विद्युलित नहीं होगा । अतएव शिवगण लौटकर अपने स्वामी की सेवा में उपस्थित हुए और प्रणाम कर बोले—‘भूतनाथ ! यह बालक तो माता पार्वतीजी का पुत्र है और उन्हीं की आज्ञा से द्वार रोककर खड़ा है । हमने अधिक कहा तो वह युद्ध के लिए प्रस्तुत-सा प्रतीत हुआ ।’

शिवजी कुपित हो गये, बोले—‘अरे, कहाँ एक छोटा बालक और कहाँ तुम अत्यन्त शक्तिशाली गण ! फिर भी तुम उसकी हठ का निवारण न कर सके ? यदि वह इतना दुराग्रही है तो उसे बल प्रयोग द्वारा द्वार से हटा दो । यदि युद्ध भी करना पड़े तो कर सकते हो ।’

गणों ने शिवजी को प्रणाम किया और पुनः भवन-द्वार की ओर चले । इस बार उन सबने अपने हाथों में विविध प्रकार के शस्त्रास्त्र ले रखे थे । उन्हें अपनी ओर आते देखकर गणेशजी उनकी ओर तनकर खड़े हो गए ।

शिवगणों ने उन्हें पुनः चेतावनी दी—‘बालक ! तुम कोई भी हो, अब तुम्हें तुरन्त हटना होगा, अन्यथा तुम अकारण ही मृत्युमुख में जा पहुँचोगे । क्योंकि हमें भगवान् शिव की आज्ञा का पालन करना अनिवार्य है ।’

गणपति ने भी निर्भीकता से उत्तर दिया—‘शिवाज्ञा-पालक गणो ! तुम बहुत हो और मैं अकेला ही शिवा की आज्ञा के पालन में तत्पर हूँ, फिर भी माता पार्वती जी अपने पुत्र की ओर भूतभावन भगवान् शङ्कर अपने गणों की शक्ति को स्वयं देख लें । अब शिव-शिवा के पृथक्-पृथक् पक्ष से क्रमशः निर्बल अकेले बालक का और बलवान् शिवगणों का युद्ध आरम्भ होने को है । हे शिवगणो ! आपने तो पहिले ही अनेक बार युद्ध किया होगा, इसलिए युद्ध में दक्ष होंगे, किन्तु मैं तो अभी युद्ध-कला से ही अनभिज्ञ हूँ । इसपर भी शिव-शिवा के इस विवाद में तुम्हें पराजय का सामना करना पड़ेगा । परन्तु ध्यान रहे कि यह हार-जीत तुम्हारी-हमारी नहीं, बरन् जगदम्बा-जगदीश्वर की होगी ।’

बालक की बात सुनकर शिवगणों को क्रोध आ गया और तब नन्दी, भृङ्गी आदि शिवगणों ने उनपर प्रहार आरम्भ कर दिया । गणेश जी भी

कुद्ध होकर छड़ी से ही कठोर प्रहार करने लगे । दोनों में घोर युद्ध होने लगा । एक ओर अकेले बाल गणेश और दूसरी ओर अनेकों, दुर्धर्ष वीर शिवगण ! किन्तु, कुछ देर में ही शिवगण व्याकुल हो उठे । महाशक्ति के शक्तिमान् पुत्र इस समय बहुत भयंकर हो उठे—

“कल्पान्तकरणे कालो दृश्यते च भयङ्करः ।

यथा तथैव दृष्टः स सर्वेषां प्रलयङ्करः ॥”

‘जिस प्रकार प्रलय के अन्त में काल अत्यन्त भयंकर दिखाई देता है, उसी प्रकार पार्वतीनन्दन भी उस समय समस्त शिवगण को प्रलयंकारी दिखाई देते थे ।’

## परास्त होकर शिवगणों का भागना

इस प्रकार रूप देखकर और युद्ध में पूर्ण रूप से परास्त होकर शिवगण प्राण बचाकर भागे । उधर पार्वतीवल्लभ अपने स्थान पर बैठे हुए ही यह सब देख रहे थे । तभी देवर्षि नारद से शिवापुत्र और शिवगणों के युद्ध का समाचार पाकर ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता वहाँ आकर शिवजी की स्तुति करते हुए बोले—‘भूतभावन ! भूतनाथ ! इस समय यह कौन लीला चल रही है ? यदि हमारे करने योग्य कोई कार्य हो तो आज्ञा कीजिए ।’

शिवजी बोले—‘क्या कहूँ ? मेरे भवन के द्वार पर छड़ी हाथ में लिये एक बालक मार्ग रोके हुए स्थित है । वह मुझे घर में नहीं घुसने देता । उसके प्रहारों से पीड़ित हुए मेरे सभी पार्षद और गण वहाँ से भाग खड़े हुए हैं । उनमें से अनेक के अङ्ग भङ्ग हो गये, अनेक वहीं गिरकर ढेर हो गये तथा अनेकों के शरीर से रक्त प्रवाहित हो रहा है । अब आप लोग स्वयं सोचें कि इस स्थिति में क्या कर्तव्य हो सकता है ?’

भगवान् विष्णु को उधर जाते देखकर शिवगणों ने उन्हें प्रणाम

किया—‘कमलासन ! भगवती उमा के प्रबल प्रतापी पुत्र ने हमारी यह दुर्दशा कर डाली है । उसे वश में करना सरल कार्य नहीं है ।’

किन्तु विष्णु ने विप्रवेश बनाया और ब्रह्माजी को साथ लेकर पार्वतीनन्दन के पास गये । उन्हें देखते ही गणपति ने अपनी छड़ी उठा ली तो भगवान् विष्णु बोले—‘मैं तो शान्त ब्राह्मण हूँ, मेरे पास कोई शस्त्र नहीं है । इसी से समझ लो कि मैं युद्ध करने के उद्देश्य से नहीं आया हूँ ।’

तभी ब्रह्माजी बोले—‘मैं तो साक्षात् कमलोद्भव हूँ । मेरे साथ तो कृपापूर्ण व्यवहार ही होना चाहिए ।’

गणेश बोले—‘बस, यही कृपा है कि आपको चुपचाप चले जाने दे रहा हूँ । आप शान्तप्रिय लोग, इस समय बने हुए इस रणक्षेत्र से तुरन्त चले जायें ।’

और ब्रह्मा-विष्णु चुपचाप वहाँ से हट गये । तभी गणों ने भगवान् शंकर के चरणों में प्रणाम कर निवेदन किया—‘प्रभो ! वह बालक तो हमें प्रलयाग्नि के समान भस्म करने को तत्पर प्रतीत होता है । उससे युद्ध करना कोई सरल कार्य नहीं है ।’

शिवजी के नेत्र लाल हो गये, उन्होंने इन्द्रादि देवताओं और षडाननादि प्रमुख गणों तथा भूत-प्रेत-पिशाच को बुलाकर क्रोध-पूर्वक आज्ञा दी—‘जैसे भी हो उस बालक को वश में करो । मेरे ही घर के द्वार पर बैठ कर वह बालक मुझपर ही शासन करे, यह कैसे सहन हो सकता है ?’

शिवजी का आदेश मिलते ही समस्त देवता, वीरवर कार्तिकेय, सभी शिवगण और भूत-प्रेत-पिशाचादि ने विभिन्न प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्रास्त्र हाथों में लिये और पार्वतीनन्दन के पास जाकर उन्हें घेर लिया । उनके चारों ओर दुर्धर्ष दिव्यकर्मा देवगण और अन्यान्य पराक्रमी वीर खड़े थे । गणपति उनके मध्य में अकेले थे ।

किन्तु वे उस महाशक्ति के पुत्र थे, जिसकी समता अन्य कोई शक्ति

कर नहीं सकती थी। चारों ओर एक साथ होने वाले प्रहार से भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने शत्रुओं के सभी प्रहारों को देखते-देखते निष्फल कर दिया। कोई भी आयुध उनका कुछ भी बिगड़ने में सफल नहीं था। महावीर गणपति ने सभी देवताओं, शिवगणों, भूत-प्रेत-पिशाचों को अपने प्रहारों से पीछे हटा दिया और सभी को विह्वल कर दिया।

समस्त शत्रुसेना भाग खड़ी हुई। उनकी वही दशा हुई जो पहिले भेजे हुए शिवगणों की हुई थी। गणेशजी जिधर भी प्रहार कर बैठते उधर ही काई-सी फट जाती। उधर ही रक्त की नदी-सी बहने लगती। उधर ही कटे अङ्ग के ढेर सारे रक्त की धार में बहते हुए अवयव दिखाई देने लगते।

देवराज इन्द्र का वज्र व्यर्थ हो गया, तारकासुर का वध करने वाले कार्तिक के आयुध निष्फल हो चुके! अकेले बालक ने ऐसा भीषण संहार कर डाला, यह एक अनहोनी घटना थी! सभी देवगणादि आश्चर्यचकित हो गये थे!



३।

### ३. तृतीय अध्याय

## शिवा द्वारा महाशक्तियों का प्राकृत्य वर्णन

महाशक्तिमयी शिवा ने सुना कि अकेले शिवानन्दन पर असंख्य वीरों ने शस्त्र प्रहार किए और वह बालक अकेला ही अविचल भाव से उन सबका सामना कर रहा है तो वे अत्यन्त कुद्द हो उठीं।

उन्होंने सोचा—‘एक छोटे से बालक पर ऐसा अत्याचार? उस निष्ठावान् वीर-पुत्र की मुझे अवश्य ही सहायता करनी चाहिए।’

ऐसा निश्चय कर उन्होंने तुरन्त ही दो महाशक्तियों को प्रकट किया । उनमें से एक काजल के पर्वत जैसी विशालकाय भयंकर एवं खुले हुए मुख विवर वाली तथा दूसरी विद्युत के समान जाज्बल्यमयी थी । उनकी अनेक भुजाएँ थीं । शिवा ने उन्हें आज्ञा दी- 'जाओ, द्वार पर गणेश की सहायता करो ।'

महाशक्तियाँ चल पड़ीं । उस समय तक देवगणादि पुनः संगठित होकर पुनः आ डटे थे । यह देखकर दोनों शक्तियाँ सक्रिय हो गईं तथा प्रथम शक्ति देवगणादि द्वारा छोड़े गये आयुधों को अपने मुख में लेती और फिर उन सब पर भीषण अस्त्रों की वर्षा करने लगती । दूसरी शक्ति विपक्षियों पर प्रहार करती हुई उन्हें भयंकर यातना देती हुई त्रस्त करती ।

इस प्रकार दोनों महाशक्तियाँ अपने अमोघ प्रहारों और भयंकर कर्मों से अद्भुत लीला करने लगीं । किन्तु वे देवियाँ कभी प्रत्यक्ष और कभी अप्रत्यक्ष रहीं तथा पार्वतीनन्दन ने निरन्तर अकेले रहकर ही विपक्ष की असंख्य सेना को रौंद डाला । जैसे मंदराचल द्वारा समुद्र का मन्थन किया था, वैसे ही अकेले शिवापुत्र ने शिवजी की दुस्तर विशाल सेना का मन्थन कर डाला । अकेले बालक के हाथ से इन्द्रादि सब देवगण एवं शिवगण क्षत-विक्षत एवं अत्यन्त व्याकुल हो गये और परस्पर विचार करने लगे-

**"किं कर्तव्यं क्व गन्तव्यं न ज्ञायन्ते दिशो दश ।**

**परिघं भ्रामयत्येष सव्यापसव्यमेव च ॥"**

कहो ! क्या करना चाहिए ? किधर जायें ? दशों दिशाओं में से कोई भी तो नहीं दिखाई देती । और यह बालक भी इतना अद्भुत कर्मा है कि अपने परिघ को दाएँ-बाएँ दोनों ही ओर सरलता से घुमा रहा है । इस प्रकार किसी को भी कुछ दिखाई नहीं दे रहा था । सभी भागने के लिए दिशा खोज रहे थे ।

उस समय नारदादि ऋषिगण तथा अप्सराएँ आदि अपने हाथों में पुष्प

और चन्दन लिये हुए उस अत्यन्त भयंकर युद्ध को देख रहे थे। वे सब भी आश्चर्य-चकित थे कि ऐसा युद्ध कभी नहीं देखा।

शिवापुत्र के समक्ष विपक्षी सेनाएँ अब अधिक न टिक सकीं। समस्त बीर अपने-अपने प्राण लेकर जिधर मार्ग मिला उधर ही भाग निकले। किन्तु, उस स्थिति में भी स्वामी कार्तिकेय रणक्षेत्र से न हटे। वे धैर्यपूर्वक युद्ध में डटे रहे। किन्तु उनके सभी आयुध कट-कट कर गिरते जा रहे थे। अन्त में अपने समस्त शस्त्रास्त्रों को निष्फल देखकर उन्होंने भी वहाँ छड़े रहना निर्थक समझा और युद्ध-क्षेत्र से हट गये।

सभी आहत एवं भयभीत देवगण आदि भगवान् नीलकण्ठ की शरण में पहुँचे और उनके चरणों में दण्डवत् प्रणाम करते हुए बोले—‘क्रिलोचन ! सर्प विभूषण ! रक्षा कीजिए। अब तक अनेकानेक युद्ध हमने देखे, किन्तु ऐसा तो कहीं देखा न सुना कि अकेला बालक ही असंख्य देवगणों, प्रमथों और शिवगणों को पराजित कर दे। उसके महान् पराक्रम की तो थाह ही नहीं है। अब आप ही कोई उपाय कीजिए, जिससे उसपर विजय प्राप्त की जा सके।’

## शिवजी का युद्ध के लिए गणेश की ओर जाना

भगवान् शंकर ने देवताओं और अपने गणों की आर्त पुकार सुनी तो क्रोध में भर गये। उनके नेत्र लाल हो गये, भौंहें चढ़ गयीं और भुजाएँ फड़क उठीं। वे तुरन्त ही गणेश की ओर चल दिए। यह देखकर समस्त देवता और शिवगण भी उनके पीछे-पीछे चल पड़े।

देवताओं ने शिवजी को युद्ध के लिए तत्पर देखा तो उनके पावन चरणों में प्रणाम करके पुनः युद्ध में कूद पड़े। इस बार भगवान् विष्णु भी गणेशजी के सम्मुख जा पहुँचे। युद्ध आरम्भ हुआ तो गणपति के दण्ड-प्रहार से व्याकुल होकर युद्ध से हट गए।

शिवजी ने देखा कि भगवान् श्रीहरि को भी पराजय का मुख देखना पड़ा और देवराज इन्द्र पहिले ही साहस छोड़ चुके हैं, तो वे सोचने लगे कि इस बालक पर कैसे विजय प्राप्त की जाये? धर्मयुद्ध द्वारा तो इसका वश में आना कठिन ही है। इसलिए इसके साथ कोई चाल चलनी पड़ेगी। यदि यह मारा जा सकता है तो केवल छल से ही, अन्य कोई उपाय सम्भव नहीं है।

ऐसा निश्चय कर शिवजी अपनी विशाल सेना के मध्य जा खड़े हुए। उनके संकेत से भगवान् विष्णु भी वहीं आ गये। संगीत का वातावरण बना, जिसमें शिवगणों ने नृत्य आरम्भ कर दिया। तभी विष्णु बोले—‘नीलकण्ठ! आप यह तो मानते ही हैं कि इसे छल किये बिना मारना सम्भव नहीं है तो मैं इसे मोहित किये देता हूँ। बस, तभी आप इसका वध कर देना।’

शिवजी ने विष्णु का सुझाव स्वीकार कर लिया। त्रिलोकीनाथ श्रीहरि के विचार को पार्वतीजी की दोनों महाशक्तियों ने जान लिया और वे गणेशजी को अपना पराक्रम प्रदान कर वहीं अन्तर्धान हो गई। इधर भगवान् विष्णु शिवजी का स्मरण करते हुए गणेशजी को मोहित करने लगे।

तभी शिवजी ने अपने हाथ में त्रिशूल उठाया और प्रहार करने को हुए। तभी गणेशजी ने अपनी महिमामयी माता पार्वती जी का स्मरण कर शक्ति प्रहार किया। वह शक्ति प्रबल वेग से जाकर लगी, जिससे उनके हाथ से त्रिशूल छूटकर दूर धरती पर जा पड़ा।

अपने त्रिशूल की यह दुर्दशा देखकर दशभुज शिवजी अत्यन्त क्रोध में भर गये। उन्होंने अपना धनुष संभालने का प्रयत्न किया, जब तक शरसंधान का प्रयत्न किया गया, तब तक तो गणेशजी ने अपने परिघ का तीव्र प्रहार किया। इस प्रकार उनका वह धनुष भी दूर जा गिरा।

## गणेशवर का मस्तक छेदन वर्णन

इस प्रहार में उनके एक ओर से पाँच हाथ आहत हो चुके थे, इसलिए अन्य पाँच हाथों में उन्होंने पाँच त्रिशूल सँभाले। किन्तु उनके प्रहार से पूर्व ही गणपति के परिघ प्रहार द्वारा बे निष्फल हो गये। इससे शिवजी बड़े चिन्तित हुए। उन्होंने सोचा—‘इस बालक ने जब मेरी ही ऐसी दशा कर दी तो अन्य देवताओं और गणों की तो बात ही क्या है?’

शिवजी इस प्रकार विचार करते हुए खड़े थे। इसी समय गणेशजी ने अपने परिघ प्रहार से देवताओं और शिवगणों को पुनः विचलित कर दिया। इस कारण शिवजी के समीप रहकर युद्ध के लिए प्रस्तुत देवसेना और शिवसेना अपने-अपने प्राण लेकर विभिन्न दिशाओं में भागने लगी।

“विष्णुस्तं च गणं दृष्ट्वा धन्योऽयमिति चाब्रवीत् ।

महाबलो महावीरो महाशूरो रणप्रियः ॥”

गणेशजी को उस प्रकार से अत्यन्त उग्र और अजेय देखकर भगवान् विष्णु कह उठे—‘यह बालक धन्य है! अत्यन्त शूर-वीर महाबली और युद्ध-प्रिय है। इसकी समता कोई भी देवता, दैत्य, राक्षस, गन्धर्वादि नहीं कर सकता। तीनों लोकों में यह अनुपम तेज, रूप, शौर्य एवं गुणों से सम्पन्न है।’

भगवान् विष्णु इस प्रकार कह ही रहे थे कि गणेशजी ने अपना परिघ उठाकर उनपर प्रहार किया, जिससे कुपित हुए श्रीहरि ने अपने चक्र को प्रेरित कर परिघ के दो खण्ड कर दिये। तब गणेश ने टूटे हुए परिघ को उठाकर विष्णु पर प्रहार किया, किन्तु गरुड़ ने उनका वह प्रहार निष्फल कर दिया।

अब विष्णु ने गणेश पर प्रहार किया तो उन्होंने भी उनके प्रहार को विफल करके अपनी माता प्रदत्त दिव्य छड़ी से प्रहार किया। किन्तु वह भी गरुड़ ने व्यर्थ कर दिया। इस प्रकार अवसर का लाभ उठाने के लिए

शिवजी ने गणेश पर अपने तीव्रतम त्रिशूल का प्रहार किया। उस समय गणेशजी उनकी ओर से असावधान थे, इसलिए प्रहार को बचा न सके। त्रिशूल उनके कण्ठ पर जाकर लगा, जिससे उनका मस्तक कटकर जा गिरा।

गणेश का मस्तक कटते ही देवता हर्षित हो गये। शिवगण भी उल्लास में झूम उठे। भगवान् शंकर का जय-जयकार होने लगा। धरती पर वाद्यों के साथ नृत्य-संगीत चलने लगा।



२२

## ४. चतुर्थ अध्याय

### पार्वती का क्रोध, महाशक्तियों का प्राकट्य

माता पार्वती को जब पता चला कि उन्हों के प्राणनाश ने गणेशजी का मस्तक काट डाला है और उसी उपलक्ष्य में देवगण और शिवगण विजयोत्सव मनाते हुए नृत्य-गान आदि करने लगे हैं, तो वे अत्यन्त व्याकुल और अधीर हो गयीं। उन्होंने सोचा, 'देखो, इन सबने मिलकर मेरे प्राणप्रिय पुत्र की हत्या कर दी! अब उस निरपराध बालक का वियोग मैं कैसे सह पाऊँगी? इनके इस अकर्म का फल तो मिलना चाहिए। मैं भी ऐसी प्रलय मचा दूँगी कि यह सब देवता और शिवगण स्वयं मृत्युमुख में जाने लगेंगे।'

उमा ने अत्यन्त कुपित होकर हजारों महाशक्तियों को उत्पन्न किया। वे शक्तियाँ शक्तिमयी माता के समक्ष हाथ जोड़ती और प्रणाम करती हुई बोलीं—'मातेश्वरि! आज्ञा कीजिए कि हमें क्या करना है?'

उमा ने ओजपूर्ण शब्दों और तीव्र स्वर में कहा—'मेरी शक्तियो! तुम

तुरन्त ही संसार में प्रलयकाल उपस्थित कर दो । देवता, दैत्य, राक्षस, यक्ष, गन्धर्व, ऋषि आदि जो भी मिलें उनका तुरन्त भक्षण करो । स्वजन-परिजन का भेद भी न करो ।'

आज्ञा मिलते ही विविध रूपवाली वे सहस्रों भयङ्कर शक्तियाँ 'माता पार्वती की जय' बोलती हुई वहाँ से चल पड़ीं । उन्होंने जहाँ जिसे देखा, उसी को उठाकर मुख में रख लिया । वे देवता, राक्षस, मनुष्य, शिवगण आदि किसी को भी नहीं छोड़ती थीं । उनके तेज में ही ऐसा आकर्षण था जो निकट होता, वह स्वयं ही खिंचा चला आता । इस आकस्मिक संकट के कारण सर्वत्र हाहाकार मच गया है, देवता, ऋषि आदि सभी ने समझा कि प्रलयकाल उपस्थित हो गया है, इसलिए सभी ने जीवन की आशा छोड़ दी थी ।

अब तो संसारभर में भय व्याप्त हो गया । देवता परस्पर मिल-बैठकर सोचने लगे कि यह सब क्या हो रहा है ? समस्त संसार धीरे-धीरे मृत्यु मुख में स्वतः ही पहुँचता जा रहा है । इसका कारण क्या है ? कुछ समझ में नहीं आता ।

कुछ कहने लगे—'प्रलय काल उपस्थित है तो प्राणों का मोह छोड़ना ही होगा । उसमें किसी का क्या वश चलेगा ? ब्रह्माजी को भी तो कलेवर बदलना होता है प्रत्येक कल्पान्त में ।'

तभी किसी ने कहा—'किन्तु कल्प का अन्त कहाँ है अभी इसलिए प्रलय भी नहीं हो सकती । यह तो कोई अन्य कारण ही है, जिससे समस्त प्राणी मृत्युमुख की ओर बढ़े चले जा रहे हैं । अच्छा हो कि ब्रह्माजी इसका कारण ज्ञात करने की कृपा करें ।'

ब्रह्माजी ने समाधि लगायी और कारण जान लिया । उनकी समाधि भंग होते ही देवगण उत्सुकता से उनकी ओर बैठ गये । चतुरानन ने धीरे-धीरे कहना आरम्भ किया—'देवगण ! शक्तिमान कामारि की प्राणप्रिया

एवं महाशक्ति उमा ने अपनी देह की मैल से गणेश नामक एक पुत्र उत्पन्न किया था, और उसकी नियुक्ति द्वार पर करके आज्ञा दी थी कि किसी को भी भीतर न आने देना । वह द्वार पर खड़ा था तभी स्वयं उमानाथ आए और भीतर जाने लगे । गणेश ने उन्हें रोका तो वे भीतर जाने की हठ करने लगे । उन्हीं के आदेश से घोर युद्ध हुआ, जिसमें तुम सबको अपने-अपने प्राण बचाने दुर्लभ थे । उसी युद्ध में उमानाथ ने ही उमापुत्र गणेश का मस्तक छिन्न कर दिया । बस, तभी से भगवती उमा का भयंकर कोप आरम्भ हो गया ।'

सभी एक-दूसरे का मुख देखने लगे । कुपित हुई महाशक्ति को कौन रोके और कौन मनाए ? तभी ब्रह्माजी ने कहा—गिरिराजकुमारी के प्रसन्न हुए बिना यह संसार रुक नहीं सकता, इसलिए भगवान् विष्णु के पास चलकर उनसे परामर्श करना चाहिए ।'

सभी भगवान् विष्णु के पास गए । उन्हें प्रलय के समान भीषण संहार की बात सुनाते हुए उसका कारण भगवती पार्वती का कोप बताया और पूछने लगे—‘त्रिलोकीनाथ ! उपस्थित संकट से आप ही उबार सकते हैं । इसलिए शीघ्र कोई उपाय कीजिए, अन्यथा समस्त, विश्व ही मृत्यु के गर्भ में जा छिपेगा ।’

श्रीहरि बोले—‘देवगण ! इस विषय में तो हमें भगवान् उमानाथ के पास ही चलना चाहिए । वे ही कालकूट-भक्षक शिव इस उपस्थित संकट से पार लगा सकेंगे ।’

## रुद्राणी के तेज से रुद्र का दुरित होना

सभी वहाँ से उठकर और विष्णु को साथ लेकर शिवजी के पास पहुँचे और हाथ जोड़कर निवेदन करने लगे—गिरिजानाथ ! आपने गिरिजासुत गणेश का मस्तक काट दिया उसी से कुपित हुई वे महाशक्ति विश्व में

प्रलय करना चाहती हैं। समस्त संसार भीषण विभीषिका से भयभीत है। अब आप ही इस सङ्कट से रक्षा करने में समर्थ हैं।

शिव बोले—‘देवगण ! तुम सबका कहना यथार्थ है। मेरा विचार है कि सभी लोग उस देवी को समझा-बुझाकर शांत करें तो कार्य बन सकता है। चलो, मैं भी साथ चलता हूँ।’

देवगण आगे-आगे और शिवजी पीछे-पीछे चले। भवानी के द्वार पर पहुँचते-पहुँचते न जाने कितने देवता शक्तियों द्वारा खींच-खींचकर निगल लिये। उस समूह में देवता, दैत्य, राक्षस, ऋषि, यक्ष, किन्नर, दिक्ष्यालादि सभी थे। वे सभी अपने-अपने प्राण बचाकर भाग खड़े हुए। इस प्रकार देवतादि में से किसी का भी साहस अब और आगे बढ़ने का न हुआ। ब्रह्मा, विष्णु की भी क्या, स्वयं रुद्र भी रुद्राणी के तेज से व्याकुल होकर पीछे की ओर भागे।

पुनः देवताओं ने एकत्र होकर विचार किया—अब क्या किया जाये? रुष्टा रुद्राणी के सम्मुख कौन पहुँचे? इस प्रकार कहते हुए वे किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच रहे थे। जिसका नाम लिया जाता वही अपनी असमर्थता प्रकट कर देता। तभी देवर्षि नारदजी का वहाँ आगमन हुआ।

देवताओं ने उनका बड़ा स्वागत-सत्कार किया और फिर रुद्राणी के रुष्ट होने का सब प्रसंग सुनाकर बोले—‘महर्षे! आप त्रिकालज्ञ और सभी उपायों के ज्ञाता हैं, जब तक भगवती गिरिजा प्रसन्न न होंगी, तब तक यह संहार रुकेगा नहीं, वरन् बढ़ता ही जायेगा। इसलिए इसका कोई उपाय करने की कृपा कीजिए।

नारदजी हँसे, बोले—‘महाशक्ति की महिमा शक्तिमान से भी सिमटने में नहीं आई? अब इसका उपाय एक ही है कि आप सब लोग रुद्राणी के समीप चलकर स्तुतियों से उन्हें प्रसन्न करें।’

नारदजी का परामर्श सभी को हितकर प्रतीत हुआ और तुरन्त ही देवर्षि को आगे करके पार्वती जी के भवन की ओर चल दिए। यद्यपि रुद्राणी अत्यन्त कुपित थीं, तो भी नारदजी को सबसे आगे देखकर मौन हो गई। तभी देवताओं ने अत्यन्त श्रद्धाभावपूर्वक उनकी स्तुति आरम्भ की। देवगण बोले—‘हे जगज्जननि ! हे शिवे ! हे परमेश्वरि ! आपको बारम्बार नमस्कार है। हे कल्याणि ! हे अम्बे ! आप ही संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय की कारणभूता हैं। भगवान् रुद्र की आदिशक्ति रुद्राणी आप ही हैं। हे मातः ! आपके कोप से त्रैलोक्य व्याकुल है, न जाने कितने जीव आपकी शक्तियों के मुख में जा पहुँचे हैं। बड़ा भीषण संहार हो रहा है देवेशि ! अब आप क्रोध को छोड़कर प्रसन्न हो जाइए। हे गिरिजानन्दिनि ! हम सभी आपके चरणों में प्रणाम करते हैं।’

इस प्रकार बारम्बार प्रणाम करने और अनेक प्रकार से स्तवन करने पर भी जगदम्बा का क्रोध शान्त न हुआ। वरन् वे मौन रहती हुई भी उन सबको क्रोधपूर्ण नेत्रों से देखने लगीं। उन नेत्रों से चिंगारियाँ निकल रही थीं। देवगण भय के कारण नेत्र झुकाकर पीछे हट गये।

## नारदजी द्वारा शिवा का स्तवन करना

यह देखकर नारदजी के साथ समस्त ऋषिगण आगे हुए और उन्होंने भगवती के चरणों में प्रणाम कर स्तवन आरम्भ किया—‘देवि ! सभी प्राणियों का संहार समुपस्थित है। दोषी देवताओं के अतिरिक्त निर्दोष ऋषिमुनि भी काल-कवलित होते जा रहे हैं। इसलिए इस व्याकुल हुए विश्व की ओर देखिए। जगदम्बे ! आपके प्राणनाथ शिवजी भी ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्रादि देवताओं एवं समस्त प्रजाओं के सहित यहाँ आपके सामने उपस्थित हैं। परमेश्वरि ! यह सभी आपके ही उपासक हैं। देवेशि ! कृपया हम सभी का अपराध क्षमा कर दीजिए। आपकी सेवा में आने पर तो बड़े-बड़े भी कृपा प्राप्त कर लेते हैं। हे शिवे ! अब क्रोध को शान्त

कीजिए और सभी को कृपापूर्ण नेत्रों से देखिए। आपको नमस्कार है, नमस्कार है।'

इस प्रकार स्तवन करते हुए ऋषि-मुनियों ने बारम्बार माता पार्वतीजी के चरणों में प्रणाम किया। उनकी इस प्रकार की प्रार्थना से धीरे-धीरे उनका क्रोध दूर होने लगा तथा वे द्रवीभूत होती हुई उन ऋषियों से कहने लगीं—

“मत्पुत्रो यदि जीवेत तदा संहरणं नहि ।  
यथा हि भवतां मध्ये पूज्योऽयं च भविष्यति ॥  
सर्वाध्यक्षो भवेदद्य यूयं कुरुत तद्यदि ।  
तदा शान्तिर्भवेल्लोके नान्यथा सुखमाप्यथ ॥”

‘हे ऋषिगण ! मैं तुम्हारे कष्टों को समझ रही हूँ। किन्तु मेरे अकेले पुत्र को मारकर उसके साथ अन्याय किया गया है। यदि मेरा वह पुत्र जीवित हो जाय और तुम सब उसे अपना पूज्य मान लो तो यह संकट दूर हो सकता है। यदि उसे ‘सर्वाध्यक्ष’ का पद दिया जाय तभी लोक में शान्ति होगी, अन्यथा कहीं कोई भी सुखी नहीं हो सकता।

ऋषियों ने जगदम्बा को पुनः प्रणाम किया और बोले—‘दयामयि ! आपने लोकरक्षा के लिए सरल उपाय बता दिया है। आपका कथन उचित ही है। इसे हम देवताओं को बताये देते हैं।’

ऐसा निवेदन कर ऋषिगण देवताओं के पास पहुँचे और माता की इच्छा उन्हें बता दी। वे सभी उन ऋषियों को साथ लेकर भगवान् शंकर के पास पहुँचे। उन्होंने उन्हें प्रणाम कर माता का सन्देश सुनाया, ‘प्रभो ! जगदम्बा का कथन है कि यदि संसार को सुखी देखना है तो मेरे पुत्र को जीवित कर उसे सर्वाध्यक्ष का पद देना होगा, अन्यथा शान्ति सम्भव नहीं है।’

शिवजी बोले—‘देवगण ! हमें उमा का कथन स्वीकार करना ही होगा । उसकी बात मानने से ही संसार का तथा हम सभी का कल्याण निहित है । इसलिए वह करना उचित है ।’

देवताओं ने कहा—‘प्रभो ! पार्वती-पुत्र जीवित कैसे हो ? उसका तो मुख भी क्षत-विक्षत हो गया है । इसलिए अब आप ही इस विषय में कुछ उचित उपाय कीजिए ।’



२३

## ५. पञ्चम अध्याय

### गजानन का पुनर्जीवन-दान वर्णन

देवताओं की प्रार्थना पर शिवजी ने कुछ देर विचार किया और फिर बोले—‘देवताओ ! उत्तर दिशा की ओर जाओ, मार्ग में जो भी प्राणी प्रथम दिखाई दे उसी का सिर काट लाओ और गणेश के कबन्ध पर जड़ दो । पहिले उस कबन्ध को स्वच्छ करके उसका पूजन करो और फिर काट कर लाये गये सिर को तुरन्त ही कबन्ध पर रख दो । इस कार्य में उस समय विलम्ब नहीं होना चाहिए ।’

शिवजी के आदेशानुसार देवताओं ने पार्वतीतनय के कबन्ध को भले प्रकार धोया और फिर पोंछकर उसका पूजन किया । तदुपरान्त उत्तर दिशा की ओर चल दिए । मार्ग में सर्वप्रथम एक दाँत का हाथी मिला । उन्होंने उसका सिर काटा और गणेश के कबन्ध पर रख दिया ।

फिर उन्होंने शिवजी से निवेदन किया—‘त्रिपुरारि ! हमने शिवापुत्र के कबन्ध पर हाथी का मस्तक रख दिया है । अब उसे प्राण प्रदान करने का कार्य ब्रह्मा, विष्णु और आपको करना है ।’

कबन्ध पर सिर रखे जाने के समाचार से सभी उपस्थितजन प्रसन्न हो उठे। फिर समस्त देवताओं ने शिवजी के चरणों में प्रणाम करके निवेदन किया—‘जगदीश्वर ! आपके जिस दिव्य तेज से हम उत्पन्न हुए हैं, वही तेज वेदमन्त्रों द्वारा इस बालक में प्रविष्ट हो ऐसी कृपा कीजिए।’

शिवजी ने स्वीकारोक्ति की तथा समस्त देवताओं ने वेद मंत्रों के द्वारा जल को अभिमन्त्रित कर उससे बालक को अभिसिंचित किया। उस जल का स्पर्श पाते ही बालक में चेतना लौटने लगी और वह कुछ ही क्षणों में जीवित हो गया। जैसे कोई व्यक्ति सोते से जाग जाता है, वैसे ही उसने नेत्र खोल दिये।

अब उस अत्यन्त सुन्दर बालक का मुख हाथी के समान हो गया। शरीर का वर्ण लाल था तथा मुखमण्डल पर अत्यन्त उल्लास दिखाई देता था। उसकी आकृति कमनीय थी। इस प्रकार शिवापुत्र को पुनर्जीवित हुआ देखकर समस्त देवता और शिवगण अत्यन्त प्रसन्न हो रहे थे। सभी को विश्वास हो गया कि अब विश्व का संकट दूर हो जायेगा।

कुछ देवता भगवती उमा के पास दौड़े गए। उन्होंने माता के चरणों में प्रणाम कर निवेदन किया—‘गणेशजननि ! आपका पुत्र पुनर्जीवित हो गया है। अब आप पूर्ण रूप से प्रसन्न हो जाइये देवेश !’

पुत्र का पुनर्जीवित होना सुनकर पार्वती जी उधर दौड़ पड़ीं और अपने पुत्र को जीवित देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुईं। उन्होंने पुत्र को दोनों हाथों से पकड़ कर अपनी गोद में लिया और हृदय से चिपका लिया। उधर भगवान् शिव भी अत्यन्त प्रसन्न हो रहे थे। हर्षातिरेक के कारण उनके नेत्र मुदे जा रहे थे।

## गजानन का अभिषेक तथा वर प्रदान करना

गजानन रूप से उमातनय के पुनर्जीवित होने के उपलक्ष्य में बड़ा भारी

आनन्दोत्सव मनाया गया। सभी देवताओं और गणों के नायकों ने उनका अभिषेक किया। तब समस्त सिद्धियों ने उनका विधिवत् पूजन किया और कल्याणमयी पार्वतीजी ने अपने दुःखनाशक करकमलों से बालक के अंगों का स्नेहसिक्त स्पर्श किया। फिर वे उनको बार-बार प्यार करने लगीं तथा बोलीं—‘पुत्र ! तुम्हें बड़ा कष्ट पहुँचाया गया। परन्तु अब सभी को ठीक प्रकार से शिक्षा मिल चुकी है।’

उन्होंने पुनः कहा—‘मेरे हृदय ! अब उस कष्ट को भूल जा। अब तो तू पूर्ण रूप से धन्य हो गया। अब यह सभी देवता, ऋषि-मुनि आदि सर्वप्रथम तेरी ही पूजा किया करेंगे। आज से तू सभी शुभ कर्मों में अग्र पूजन का अधिकारी हो गया है। अब भविष्य में तुझे सताने का साहस कोई भी न करेगा।’

तदुपरान्त जगदम्बा ने गजवदन को अमोघ वर प्रदान करते हुए कहा—‘पुत्र ! इस समय तेरा मुख सिन्दूर युक्त दिखाई दे रहा है, इसलिए संसार में तेरी पूजा सिन्दूर से की जायेगी। पुष्प, चन्दन, गन्ध, नैवेद्य, नीराजन, ताम्बूल, दान एवं नमस्कारादि के द्वारा तेरा पूजन करने वालों को समस्त सिद्धियाँ प्राप्त होंगी और समस्त विघ्नों का निःसन्देह ही शमन हो जायेगा।’

फिर भगवती ने उसे अनेक प्रकार की वस्तुएँ प्रदान कर सम्मानित किया। तब निर्भय, निश्चन्त हुए देवता उन पार्वतीपुत्र को भगवान् शंकर के पास ले गये और उनके अङ्क (गोद) में बिठा दिया। शिवजी ने उनके मस्तक पर वरद-हस्त रखते हुए कहा—‘यह मेरा द्वितीय पुत्र है।’

तब गजानन ने भी गोद से उठकर अपने पिता भगवान् शंकर के चरण-कमलों में श्रद्धा-सहित प्रणाम किया। फिर अपनी माता को प्रणाम कर ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओं और नारदादि ऋषियों का अभिवादन किया और बोले—‘यद्यपि अभिमान करना तो स्वाभाविक है, फिर भी मुझसे अहङ्कारवश जो अपराध हुआ हो उसे आप सब क्षमा कर दें।’

तब ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनों देवताओं ने हर्षित होकर गजानन को इस प्रकार वर दिया—

“त्रैलोक्ये सुरवराः यथा पूज्याः जगत्त्रये ।

तथायं गणनाथश्च सकलैः प्रतिपूज्यताम् ॥”

‘हे देवगण ! जैसे त्रैलोक्य में हम तीनों देवता पूजे जाते हैं, वैसे ही तुम इन गणनाथ का भी पूजन करना । मनुष्यों का भी कर्तव्य है कि वे इन्हीं का पूजन सर्वप्रथम किया करें । हमारा पूजन इनका पूजन करके ही करें । यदि कोई इनका पूजन पहले न करके हमारा करेगा तो उसके पूजन का फल नहीं होगा ।’

त्रिदेवों की घोषणा सुनकर सभी को बड़ा आनन्द हुआ । तभी महिमामयी महाशक्ति उमा की प्रसन्नता के लिए त्रिदेवों और सभी देवताओं ने गणेश्वर को सर्वाध्यक्ष की उपाधि से विभूषित किया । तदुपरान्त उमापति भगवान् शिव ने गजानन को सदैव सुखी करने वाले अनेक वर दिए ।

नीलकण्ठ बोले—‘गिरिजासुवन ! हे पुत्र ! मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ, इसलिए अब तुम समस्त विश्व को ही प्रसन्न हुआ समझो । क्योंकि मेरी प्रसन्नता में विश्व की प्रसन्नता और मेरे रोष में संसार का रोष निहित है । अब कोई भी देवता, दैत्य, यक्ष, किन्नर, उरग, मनुष्य आदि तुम्हारे विरोध का साहस नहीं कर सकता । तुम महाशक्ति के पुत्र हो, इसलिए स्वयं भी अत्यन्त तेजस्वी हो । तुमने युद्ध में महापराक्रम प्रदर्शित करके स्पष्ट कर दिया है कि तुम्हारा सामना कोई भी नहीं कर सकता, विष्णों के नाश में तुम सर्वश्रेष्ठ होगे । सभी के पूज्य होने के कारण मैं तुम्हें अपने समस्त गणों का अध्यक्ष बनाता हूँ ।’

शिवजी ने कुछ देर बाद पुनः कहा—‘गणाध्यक्ष ! तुम्हारा जन्म भाद्रपद मास की चतुर्थी को शुभ चन्द्रोदय में हुआ है, इसलिए उस दिन

तुम्हारा व्रत रखना भी कल्याणकारी होगा । यह चतुर्थी व्रत और पूजन सभी वर्ण के मनुष्यों और स्त्रियों को भी करना चाहिए । जो राजा आदि अपने अभ्युदय की कामना करते हों, वे भी इसे करके अभीष्ट प्राप्त कर सकते हैं । तुम्हारा व्रत रखने वाला मनुष्य जिस-जिस पदार्थ की कामना करेगा, उस-उस की भी प्राप्ति उसे अवश्य होगी ।'

भगवान् शंकर द्वारा इस प्रकार वर प्रदान करने पर समस्त देवताओं, ऋषियों और गणों ने उनका अनुमोदन किया और फिर समस्त उपचारों से विधि-विधानपूर्वक गणाध्यक्ष का पूजन किया । फिर शिवगणों ने भी उनका पूजन-वन्दन किया और 'गणाध्यक्ष गजानन भंगवान् की जय' बोलने लगे । इससे समस्त त्रिलोकी गूँज उठी । अपने प्राणप्रिय पुत्र का इस प्रकार सम्मान हुआ देखकर पार्वती जी बहुत प्रसन्न हुई ।

## आनन्दोत्सव का समाप्ति

अब भारी आनन्दोत्सव मनाया जाने लगा । देवगण, दुन्दुभियाँ बजाने लगे, अप्सराएँ नाचने लगीं, गन्धर्वों ने मधुर-ध्वनि में गीत गाये और अन्तरिक्ष से दिव्य पुष्पों की वर्षा हुई । प्रकृति में भी उल्लास छा गया । वन और नगर सब वैभव से सम्पन्न हो गये । सर्वत्र वृक्षों पर मनोहर पुष्प और मीठे फल लद गये । हरित तृण एवं पौधों से सम्पन्न हुई पृथिवी ऐसी प्रतीत होती थी, मानो उसने हरी चादर ओढ़ ली हो और उस पर बेल-बूटे आदि का काम हो रहा हो ।

देवताओं और अप्सराओं द्वारा किए जाने वाले संगीत एवं नृत्य में समस्त चराचर विश्व तन्मय हो गया । जो सुनता वही नाचने लगता । शिवगण, उमा की सहेलियाँ आदि ने भी उसमें भाग लिया । फिर स्वयं भगवती उमा भी आनन्द में भर कर नृत्य करने लगीं ।

तब भगवान् शङ्कर भी कैसे बैठे रहते ? वे तो जागृति में सदैव

नर्तनशील रहते हैं। इसलिए डमरू उठाया और नृत्य करने लगे। यह देखकर समस्त विश्व ही नृत्यात्मक हो गया। सभी दिशाओं में विद्यमान देहधारी आनन्दमग्न होकर नृत्यरत थे। लगता था कि सारा विश्व ही नाच रहा है।

इस प्रकार समस्त संसार आनन्दमग्न था। सभी के दुःख दूर हो चुके थे, सर्वत्र सुख-शांति का साप्राप्य छा गया।

जब आनन्दोत्सव पूर्ण हुआ तब ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवताओं ने सर्वानन्द विग्रह भगवान् गणाध्यक्ष का बारम्बार पूजन किया तथा साथ में शिव की भी स्तुति की। तदुपरान्त शिव-शिवा और गणपति से आज्ञा लेकर सभी अपने-अपने धाम को छले गए। श्रीगणेश जी का यह उपाख्यान सब प्रकार से अभीष्ट पूर्ण कराने में समर्थ है—

“इदं सुमङ्गलाख्यानं यः शृणोति सुसंयतः ।

सर्वमङ्गलसंयुक्तः स भवेन्मङ्गलायनः ॥”

‘इस परम मंगलमय आख्यान को जो उपासक सुसंयत मन से सुनता है, वह समस्त मङ्गलों से सम्पन्न होता हुआ स्वयं भी मङ्गलों का घर ही हो जाता है।’



## १. प्रथम अध्याय

**शौनक का पुण्यव्रत-विषयक प्रश्न**

शौनक बोले—‘हे सूतजी ! हे महाभाग ! सुनते हैं कि एक बार भगवान् शंकर ने भगवती पार्वती को किसी सन्तानदाता व्रत का उपदेश दिया था । वह व्रत अमोघ होने के कारण कभी निष्फल नहीं जाता । उस व्रत का अनुष्ठान करके गिरिराजनन्दिनी भी सफल मनोरथ हुई थीं । हे प्रभो ! आप उस उपाख्यान के भी पूर्ण जानकार हैं । अतः उसे मेरे प्रति कहने की कृपा कीजिए ।’

सूतजी उस प्रश्न को सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और कुछ देर मौन रहकर उन उमा का स्मरण करने लगे । तभी शौनक जी ने देखा कि उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु निकल रहे हैं । सूतजी ने अपने नेत्र पोंछते हुए कहा—‘धन्य हो शौनक ! जो बार-बार भगवान् के अद्भुत चरित्रों के प्रति जिज्ञासा करते हो । तुमने जो प्रश्न किया है उससे सम्बन्धित गाथा एक बार भगवान् श्रीनारायण ने देवर्षि नारदजी को सुनाई थी । जगज्जननी पार्वती के अङ्क में उस व्रत के प्रभाव से साक्षात् अव्यक्त परब्रह्म ही व्यक्त हुए थे ।

‘प्राचीन काल की बात है जब शैलपुत्री के साथ भगवान् शंकर का विवाह हुए कुछ ही काल व्यतीत हुआ था, भगवान् वृषध्वज उनके साथ निर्जन वन में निवास कर रहे थे तथा वहाँ उनका विहार दीर्घकाल तक चलता रहा था । तभी एक दिन शैलनन्दिनी ने उनसे निवेदन किया—‘प्रभो ! मुझे एक अत्यन्त श्रेष्ठ पुत्र की कामना है । क्योंकि पुत्र के बिना घर तो सूना रहता ही है, कहते हैं कि पुत्रहीन गृहस्थ को परम पुरुषार्थ की भी प्राप्ति नहीं होती ।’

शिवजी ने गिरिराजपुत्री का अभिप्राय समझ लिया और बोले—‘प्रिये ! परम पुरुषार्थ की प्राप्ति तो हमें सदैव रहती है, उससे वञ्चित तो हम कभी, किसी भी स्थिति में नहीं हैं, फिर भी तुम्हें पुत्र की अभिलाषा है, उसकी प्राप्ति के लिए मैं तुम्हें एक अमोघ उपाय बतलाऊँगा ।

‘देखो, एक ऐसा व्रत है, जो सभी में श्रेष्ठ तथा अभीष्टसिद्धि का बीज रूप है । उसके द्वारा परम बल और हर्ष की प्राप्ति होती है । यदि तुम उस व्रत को करो तो अवश्य ही अभीष्टपूर्ति होगी । उस परम शुभदायक व्रत को ‘पुण्यक’ कहते हैं । इसका अनुष्ठान एक वर्ष में पूर्ण होता है ।’

“हरेराराधनं कृत्वा व्रतं कुरु वरानने ।

व्रतश्च पुण्यकं नाम वर्षमेकं करिष्यति ॥”

पार्वती जी उस व्रत के विषय में सुनकर बहुत प्रसन्न हुईं और उन्होंने देवाधिदेव शिवजी से पूछा, ‘नाथ ! यह व्रत पहिले भी किसी ने किया है क्या ? यदि किया हो तो उसका उपाख्यान मुझे सुनाने की कृपा कीजिए, जिससे मुझे व्रत की विधि का भी ज्ञान हो जाय और अनुमान लगा सकूँ कि मैं उसे कर सकूँगी या नहीं ।’

शिवजी बोले—‘देवि! यह व्रत कुछ कठिन नहीं है । पूर्व काल में इसे मनु-पत्नी शतरूपा ने किया था । वह अधिक आयु होने पर भी सन्तान न होने के कारण बहुत दुःखी थी । जब उसे कोई भी उपाय दिखाई न दिया तो वह पति की अनुमति से लोकपितामह के पास ब्रह्मलोक में जा पहुँची और वहाँ उनके चरणों में प्रणाम करके बोली—

‘हे प्रभो ! आप समस्त संसार के कर्ता तथा विजय के कारणों के भी कारण हैं । आपकी इच्छा के बिना सर्गोत्पत्ति नहीं हो सकती । हे दयालो ! मेरी इतनी आयु हो गई, किन्तु पुत्र नहीं हुआ और पुत्र के बिना गृहस्थजीवन सर्वथा नीरस एवं व्यर्थ ही रहता है । विद्वानों का कहना है कि

पुत्रहीन दम्पति का जन्म एवं वैभव किसी भी काम का नहीं होता । यद्यपि जप, तप, दान, धर्म का पुण्य जन्मान्तर में श्रेष्ठ फल देने वाला कहा है, फिर भी इस लोक और परलोक, दोनों में ही सुख, प्रसन्नता और सोक्ष की प्राप्ति का साधन पुत्र ही है ।

‘हे लोकपितामह ! पुत्र के द्वारा ‘पुम्’ नामक नरक से रक्षा होती है, इसलिए वह परलोक में भी आनन्द का होने वाला कहा है । हे देव ! कृपया मुझे यह बताने का कष्ट करें कि मुझ जैसी पुत्रहीन स्त्रियों को पुत्र की प्राप्ति किस उपाय से हो ? हे दीनबन्धो ! मैं पुत्र के अभाव में अत्यन्त दुःखी हूँ । अतएव कोई अमोघ उपाय बताकर मेरी अभीष्ट सिद्ध कीजिए ।’

ब्रह्माजी मौन रहते हुए उसकी बात सुन रहे थे । उसने समझा कि पितामह कुछ उत्तर नहीं दे रहे हैं तो निराश-सी होती हुई बोली—‘प्रभो ! यदि कोई उपाय नहीं हुआ तो मैं पतिदेव के साथ वन में जाना ही उचित समझूँगी । उस स्थिति में हमारे लिए पृथ्वी के राज्य, वैभव, सुवश आदि की कुछ भी उपयोगिता नहीं रहेगी । इसलिए उस सबको चाहे आप स्वयं सँभालें अथवा किसी अन्य को दे दें ।’

## पुण्यक-ग्रत का विधान

यह कहकर शतरूपा अत्यन्त दुःखावेग के कारण चतुरानन के समक्ष फूट-फूट कर रोने लगी । यह देखकर दयामय पितामह ने शतरूपा को आश्वासन देते हुए कहा—‘देवि ! रोओ मत, शान्त होकर मेरी बात सुनो । मैं तुम्हें एक ऐसा उपाय बताता हूँ जो सभी कामनाओं की सिद्धि करने वाला है । उसके द्वारा धन, सन्तान, सत्कीर्ति, स्त्री को पति और पुरुष को पत्नी की प्राप्ति होती है । उसका अनुष्ठान करने पर निश्चय ही भगवान् श्रीहरि के समान पराक्रमी, ऐश्वर्य सम्पन्न एवं महिमाशाली पुत्र की प्राप्ति होती है ।’

..... शतरूपा ने पूछा—‘पितामह ! इस व्रत का नाम क्या है तथा कब से आरम्भ करना चाहिए ? इसके अनुष्ठान में किस देवता की उपासना की जाती है ? सो सब मुझसे कहने की कृपा करें ।’

चतुर्मुख ने बताया—‘इस व्रत को ‘पुण्यक’ कहते हैं । इसका अनुष्ठान माघ मास के शुक्लपक्ष की ब्रयोदशी से आरम्भ करना चाहिए । इसमें समस्त भोग और मोक्ष के देने वाले परब्रह्म श्रीकृष्ण की आराधना की जाती है । व्रतारम्भ के प्रथम दिन उपवास करना चाहिए तथा दूसरे दिन प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त में उठकर शौचादि से निवृत्त होकर शुद्ध स्वच्छ जल में स्नान करे । तदनन्तर आचमनादि करके भगवान् श्रीकृष्ण को अर्घ्य प्रदान करे । उसके पश्चात् नित्यकर्म करे और फिर पुरोहित का वरण करके स्वस्तिवाचन, कलश-स्थापन एवं व्रत का संकल्प करे । फिर प्रथमपूजा के अधिकारी गणेश्वर का पूजन कर गोलोकधाम-निवासी भगवान् श्रीकृष्ण का षोडशोपचार पूजन कर इस महान् व्रत का अनुष्ठान आरम्भ करे ।’

२६ तदुपरान्त सौन्दर्य, नेत्र-ज्योति, पति सौभाग्य आदि की अक्षुण्णता के लिए विभिन्न वस्तुओं के समर्पण का निर्देश करते हुए पुत्र-प्राप्ति के लिए समर्पण का इस प्रकार उपदेश किया—‘देवि ! पुत्र की कामना से किए जाने वाले अनुष्ठान में कूष्माण्ड, नारियल, जम्बीर और श्रीफल का समर्पण किया जाता है । अनुष्ठान काल में प्रभु की प्रसन्नता के लिए अनेक प्रकार के संगीत-वाद्यादि के साथ भगवान् श्रीहरि का गुण कीर्तन करना चाहिए । उनकी विशेष कृपा प्राप्त करने के लिए सुगन्धित पुष्पों की एक लाख मालाएँ अर्पण करें । उसके पुष्प सुन्दर, स्वच्छ एवं बिना टूटे हुए हों । प्रभु को भोग रूप में अनेक प्रकार के मधुर एवं सुस्वादु व्यञ्जन समर्पित करने चाहिए । भगवान् की परम प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए तुलसीदल युक्त शुभ गन्ध से समन्वित पुष्प भेंट करे । यदि जन्म-जन्मान्तर में धन-धान्य की समृद्धि की कामना हो तो नित्य-प्रति एक सहस्र ब्राह्मणों को तृप्तिकर भोजन करावे और दक्षिणा दे ।

‘नित्य-प्रति पूजा-काल में प्रभु-विग्रह के चरण-कमलों में सुगन्धित पुष्पों की सौ अंजुलियाँ समर्पण करके प्रणाम करना चाहिए, व्रतारम्भ से छः मास तक अंगहीन धान, मूँग, मटर, जौ, तिल, साठी चावल, तिनी, दूध, घृत, शर्करा, धी में पकाया हुआ अन, लौंग, पीपल, जीरा, सैंधव, समुद्र लवण, मूली, बथुआ, इमली, आम, सन्तरा, कटहल, केला, हरड़, आमला इत्यादि हविष्यान का सेवन करे। फिर पाँच मास तक मधुर फलों का आहार और एक पक्ष तक हविष्य का आहार करे। शेष पन्द्रह दिन तक निराहार रहे, केवल जल का ही सेवन करे। रात्रि में भी कुश के आसन पर जागरण करे तो अधिक फल होगा। व्रती को संयम से रहते हुए केवल श्रीहरि में ही ध्यान लगाए रखना चाहिए।

‘ब्रत पूर्ण होने पर उसका उद्यापन करे। उसमें तीन सौ आठ डलियों में उत्तम उपहार रखकर उन सबको सुन्दर वस्त्रों से ढक कर दान करे। भोजन के पदार्थ और यज्ञोपवीत भी दे तथा एक हजार तीन सौ आठ ब्राह्मणों को भोजन करावे और घृत की इतनी ही आहुतियों से हवन करे। कार्य की सम्पन्नता होने पर दक्षिणा में एक हजार तीन सौ आठ सोने की मुद्राएँ तथा अन्य प्रकार की भी दक्षिणा देनी चाहिए।’

लोकपितामह से पुण्यक-ब्रत एवं उसकी विधि सुनकर शतरूपा बहुत प्रसन्न हुई और उन्हें प्रणाम करके अपने स्थान पर लौट आई। उसने उस परम शुभदायक पुण्यक-ब्रत का विधिपूर्वक अनुष्ठान किया।

उसी ब्रत के प्रभाव से उसे प्रियब्रत और उत्तानपाद नामक दो सुन्दर, यशस्वी और अत्यन्त पराक्रमी पुत्रों की प्राप्ति हुई। इससे राजा मनु को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसके दोनों बालक आनन्द से परिपूर्ण हो गए।

शिवजी बोले— ‘हे शिव ! महाभागा देवहूति ने भी इस अत्यन्त पुण्य-फल-दायक पुण्यक-ब्रत का अनुष्ठान किया था। उसके फलस्वरूप उन्हें भगवान् श्रीहरि के अंशावतार एवं सिद्धों में श्रेष्ठ कपिल देव की पुत्र रूप

में प्राप्ति हुई थी । उन्हीं कपिल भगवान् ने सांख्य-शास्त्र की रचना कर अज्ञानान्धकार में पड़े हुए प्राणियों को ज्ञान का प्रकाश कराया था ।'

'हे पार्वती ! इसी महा पुण्यक-व्रत को परम सती अरुन्धती ने भी अत्यन्त उल्लासपूर्वक एवं विधि सहित करते हुए भक्ति-मुक्ति दायक भगवान् श्रीहरि की उपासना की थी, जिसके प्रभाव से उन्हें पुत्र रूप में शक्ति की प्राप्ति हुई थी ।

'देवमाता अदिति ने भी परम भक्तिभावपूर्वक इसी पुण्यक नामक महा अनुष्ठान का आश्रय लिया था । उनकी आराधना से प्रसन्न हुए भगवान् श्रीहरि ने उनके अंक में साक्षात् पुत्र रूप से भगवान् वामनदेव का अवतार धारण किया था, जिन्होंने अपने तीन पदों में तीनों लोकों को नाप लिया था ।

'इन्द्राणी शत्र्यु ने भी इसी पुण्यक-व्रत का अनुष्ठान करके जयन्त नामक पुत्र प्राप्त किया था । मनु-पुत्र राजा उत्तानपाद की पत्नी ने भी पुण्यक-व्रत द्वारा श्रीकृष्ण की आराधना करके परम भगवद्भक्त ध्रुव को उत्पन्न किया था ।

'हे पार्वती ! धनेश्वर कुबेर की पत्नी ने नलकूवर को जन्म दिया था, उसमें भी इसी व्रत का प्रभाव था । सूर्य-पत्नी ने मनु को तथा महर्षि अत्रि की पत्नी ने चन्द्रमा को पुत्र रूप में उत्पन्न किया था । हे शुभे ! महर्षि अङ्गिरा को परम विद्वान् एवं महिमामय देवगुरु बृहस्पति की पुत्र रूप में प्राप्ति भी इसी व्रत के प्रभाव से हुई थी ।

'शैलनन्दिनी ! भृगुपत्नी को भगवान् नारायण के अंशभूत परम तेजस्वी दैत्यगुरु शुक्राचार्य की जो प्राप्ति हुई थी, उसमें भी इसी पुण्यक-व्रत का प्रभाव निहित था ।

'राज-राजेन्द्रों की महारानियों और देव-पत्नियों को यह व्रत अत्यन्त आनन्द देने वाला एवं सुख-साध्य है । अन्य साध्वी स्त्रियों के लिए भी

प्राणों से अधिक प्रिय, सौभाग्य-वर्द्धक एवं समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला है।'

## पुण्यक-व्रत की फल-श्रुति

'हे शिवे ! इस व्रत का अनन्त फल है। अब तक जो बताया जा चुका है, उससे असंख्य गुना शुभ प्रदान करने वाला है। इसके द्वारा समस्त अभीष्टों की सिद्धि होती है। इसका अनुष्ठान करने वाले के सभी विज्ञों का इसके प्रभाव से निवारण हो जाता है। त्रिभुवन-विख्यात पुत्र एवं सतत सौभाग्य की प्राप्ति होती है। असुन्दर स्त्री-पुरुष इसके द्वारा सौन्दर्य प्राप्त कर सकते हैं। धनहीनों को धन, भूमिहीनों को भूमि तथा पशु-वाहनादि से वंचितों को इच्छित पशु एवं वाहनादि प्राप्त होते हैं। वस्तुतः ये महान् व्रतानुष्ठान प्रत्येक जन्म में अभीष्ट सिद्धियों की उपलब्धि कराने वाला एवं सभी व्रतों का बीज रूप है।'

भगवान् शशिशेखर द्वारा पुण्यक-व्रत की विधि और माहात्म्य सुनकर देवी पार्वती के मन में उसके अनुष्ठान करने की इच्छा हुई और उन्होंने देवाधिदेव से निवेदन किया—‘प्रभो ! मैं इस व्रत को करना चाहती हूँ, किन्तु इसकी व्यवस्था किस प्रकार हो ?’

शिवजी ने कहा—‘शिवे ! इस व्रत के साधन-भूत पुष्य और फल लाने के लिए मैं सौ ब्राह्मणों को तथा अन्यान्य सामग्री लाने के लिए सौ भूत्यों और आवश्यक संख्या में अन्य दास-दासियों को नियुक्त किए देता हूँ। पुरोहित पद पर नियुक्ति हेतु सभी व्रत विधियों के जानने वाले वेद-वेदांगों के परम विद्वान् सर्वज्ञ परम ज्ञानी एवं हरिभक्त सनत्कुमार को बुला दूँगा। इस प्रकार तुम इस परम श्रेष्ठ व्रत का श्रद्धाभक्ति एवं विधि सहित पालन करो। इसका अनुष्ठान करने से तुम्हें परम दुर्लभ पुत्ररत्न की प्राप्ति अवश्य ही होगी।’



२६

## २. द्वितीय अध्याय

# गिरिजा द्वारा पुण्य-व्रत का अनुष्ठान करना

भगवान् शङ्कर की आज्ञा सुनकर गिरिजानन्दिनी अत्यन्त आनन्द में मग्न हो गई और पुण्यक-व्रत का अनुष्ठान आरम्भ करने के लिए आवश्यक सामग्री एकत्र करने लगीं।

तभी भगवान् आशुतोष की आज्ञा से अनेकानेक ब्राह्मण, भृत्य एवं गण वहाँ आ उपस्थित हुए। माघ मास के शुक्लपक्ष की त्रयोदशी आने पर उन्होंने शुभ मुहूर्त में व्रत का आरम्भ किया।

उसी अवसर पर ब्रह्मपुत्र सनत्कुमार, सप्तलीक चतुरानन एवं पार्वतीपति भगवान् शङ्कर भी वहाँ आ गए। भगवान् विष्णु भी अपनी प्रियतमा लक्ष्मीजी के सहित वहाँ पथारे। साथ में उनके पार्षदगण भी थे। तदनन्तर सनक, सनन्दन, सनातन, कपिलदेव, धर्मपुत्र नर-नारायण तथा समस्त प्रसिद्ध एवं दिव्य ऋषि-मुनि भी वहाँ समुपस्थित हो गये।

समस्त प्रमुख देवता, यक्ष, नाग, किन्नर आदि तथा सभी दिक्पाल एवं पर्वतराज हिमालय भी अपनी पत्नी, पुत्रादि के साथ वहाँ आ गए। उनके साथ धरती में उत्पन्न होने वाले रत्न, मणि आदि अनेक दुर्लभ पदार्थ थे। एक लाख गज-रत्न, तीन लाख वरद-रत्न, दस लाख गो-रत्न, एक करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ, चार लाख मोती, एक हजार कौस्तुभ-मणियाँ तथा अत्यन्त स्वादिष्ट मिष्ठानों एवं पकवानों के एक लाख भाग भी उनमें सम्मिलित थे। साथ ही, अन्यान्य व्रतोपयोगी वस्तुएँ भी वे शैलराज ले आये थे।

मनु, मुनि, ब्राह्मण, विद्याधर आदि के भी अनेकानेक समुदाय उस व्रतायोजन के आरम्भ में ही वहाँ आकर ठहर गये। संन्यासी, भिक्षुक एवं वन्दीगणों की संख्या भी कम नहीं थी। संसार में विद्यमान प्रमुख योनियों

के करोड़ों प्राणी उस उत्सव को देखने के लिए वहाँ आ उपस्थित हुए थे ।

कैलास पर्वत की उस समय की शोभा देखने योग्य थी । राजमार्ग को झाड़-बुहार कर स्वच्छ किया गया था और उसपर चन्दन मिश्रित द्रव्य का छिड़काव किया गया था ।

भगवान् शङ्कर का भवन पद्मराग मणियों द्वारा बना था, जिसमें सर्वत्र बन्दनवार बँधे थे और वह अनेक प्रकार से सजाया गया था । उसमें धान्य, लाजा, फल, दूर्वा, पुष्प एवं कदली वृक्ष की अद्भुत चित्रकारी की गई थी । उस विचित्र शोभा को देखकर सभी आश्चर्यचकित हो रहे थे ।

सर्वत्र प्रसन्नता का वातावरण व्याप्त था । जन-जन में आनन्द और उल्लास भरा था । लगता था, जैसे परमानन्द मूर्तिमान होकर साक्षात् नृत्य कर रहा है । भगवान् शङ्कर स्वयं भी समागत व्यक्तियों का अभिनन्दन और समर्चन कर रहे थे । जो जिस योग्य था, उसके लिए उसी के अनुरूप निवास और परिचर्या आदि की व्यवस्था की गई । भोजनादि का प्रबन्ध भी सर्वोत्तम था । शिवजी के समस्त गण उस उत्सव को अत्यन्त शोभनीय बनाने में तत्पर थे ।

सृष्टि-स्थिति-संहारकारिणी जगदम्बा पार्वती जी के व्रतानुष्ठान में दीक्षित होने के अवसर पर देवराज इन्द्र दानाध्यक्ष, धनेश्वर कुबेर धनाध्यक्ष तथा भगवान् भास्कर कार्याध्यक्ष के पद पर विराजमान हुए । वरुणदेव को भोजनाध्यक्ष बनाया गया, जिनका कार्य पाकशाला और भोजनशाला दोनों पर निगरानी रखना था ।

सामग्री-भण्डार में गेहूँ, चावल, दाल, जौ, तिल आदि अनाज समा नहीं रहे थे । बाहर अनेक स्थानों पर उनके ढेर लग गये तथा दूध, दही, घृत, तैल आदि की तो मानो नदियाँ ही प्रवाहित होने लगीं । गुड़, शर्करा आदि के पर्वत तुल्य अनहित ढेर लगे थे । रजत और स्वर्ण से धरती लिप गई, जिस पर मणि, रत्न आदि के अनेकानेक ढेर लगते जा रहे थे । तैयार

भोजन-सामग्री भी गिरि-शिखर के समान ऊँचे-ऊँचे ढेरों में रखी थी। जिसे, जब, जिस वस्तु की आवश्यकता हो, वह तभी बिना किसी रोक-टोक के स्वयं ही प्राप्त कर सकता था।

उस सामग्री के अतिरिक्त विशिष्ट समागतों के लिए रसोई तैयार कराने का कार्य-भार सिन्धुतनया लक्ष्मीजी ने अपने हाथ में लिया तथा अनेक प्रकार के सुन्दर, सुखादु व्यञ्जन तैयार किए गये। उस भोजन को परोसने का कार्य एक लाख ब्राह्मण कर रहे थे। अनेक प्रमुख देवताओं तथा देवराज इन्द्र आदि के साथ उस समय स्वयं भगवान् नारायण रुचिपूर्वक भोजन कर रहे थे।

देवता दिव्य ऋषि-मुनि आदि के भोजन से निवृत्त होने पर सभी एक विशाल वितान के नीचे बैठे। वहाँ बैठने के लिए सुन्दर, कोमल मखमली गद्दे बिछाये गये थे। पदानुसार बैठने की व्यवस्था थी। भगवान् नारायण के लिए एक सुन्दर, दर्शनीय भव्य रत्न-सिंहासन था, जिसपर वे विराजमान थे।

उनके सब और प्रमुख देवता एवं ऋषिगण स्थित थे। उनके तेजस्वी पार्षदगण उनपर चँवर डुला रहे थे, उस समय सिद्ध, चारणादि उनका स्तवन करने लगे। गन्धर्वों ने श्रुतिमधुर गीतों का आरम्भ किया। चतुर ब्राह्मणों ने भगवान् को सुगन्धित ताम्बूल दिया।

उसी समय चतुरानन की प्रेरणा पर भगवान् शंकर ने हाथ जोड़कर उनसे निवेदन किया—‘हे जगदीश ! भक्तों की कामना के कल्पतरु नाथ ! मेरी प्रार्थना श्रवण कीजिए। हे प्रभो ! गिरिराजनन्दिनी आज उत्तम व्रत का आरम्भ करना चाहती है। उसे श्रेष्ठ पुत्र एवं पति-सौभाग्य की कामना है। आप सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी एवं समस्त कर्म फलों के देने वाले हैं, अतएव परम मंगलकारिणी आज्ञा प्रदान करने की कृपा करें।’

तदुपरान्त पार्वतीपति ने उनका अनेक प्रकार से स्तवन किया और

फिर ब्रह्माजी के मुख की ओर देखते हुए मौन खड़े हो गये। यह देखकर भगवान् लक्ष्मीनाथ ने गम्भीर वाणी में कहा—‘गिरिजानाथ! आपकी धर्मपत्नी पुत्र-प्राप्ति के उद्देश्य से जिस पुण्यक-ब्रत का आरम्भ करना चाहती है, वह ब्रतराज समस्त ब्रतों का सारभूत एवं समस्त अभीष्ट फलों के प्रदान करने में समर्थ, समस्त सुखों और कल्याणों को देने वाला तथा अन्त में मोक्ष का दाता है। इसके अनुष्ठान से हजारों राजसूय यज्ञों का पुण्य सहज में ही प्राप्त हो जाता है।

‘त्रिनेत्र ! इस ब्रत के अनुष्ठान में हजारों राजसूय यज्ञों के समान ही साधन जुटाने में धन का व्यय होता है। इसलिए इसे सामान्य साध्वी स्त्रियाँ नहीं कर सकतीं। परन्तु साध्वी शिवा इसके करने में सहज समर्थ हैं, इसलिए उन्हें यह अवश्य करना चाहिए। इसके प्रभाव से उनके अङ्क में भगवान् गोलोकनाथ साक्षात् क्रीड़ा करेंगे। वे ‘गणेश’ नाम से अवतार लेंगे, जिनके स्मरण मात्र से ही समस्त विद्यों का नाश हो जायेगा।’

भगवान् रमानाथ के कृपापूर्ण वचन सुनकर भगवान् वृषभध्वज प्रसन्न हो गए। उनका हृदय गदगंद हो गया। तदुपरान्त वे वहाँ से उठकर अन्तःपुर में गए और गिरिराजनन्दिनी को भगवान् नारायण के कहे हुए वचन सुनाये। इससे शैलपुत्री भी अत्यन्त प्रसन्न हुई। तभी ब्रतारम्भ का शुभ मुहूर्त आ गया।

पार्वती जी के ब्रतारम्भ काल में भगवान् शिव की प्रेरणा से अनेक प्रकार के दिव्य बाजे बजने लगे। तभी शैलनन्दिनी ने पवित्र गङ्गाजल से स्नान कर शुद्ध वस्त्र धारण किए और विप्रों ने पूजा-विधि का आरम्भ किया। चावलों पर विधिपूर्वक रत्न मणि-मणिडत स्वर्ण कलश स्थापित किया गया और तब श्रेष्ठ मुनियों एवं पुरोहित को रत्नमय सिंहासनों पर बैठाकर उनका पूजन किया गया। फिर आदिदेव गणेश्वर की पूजा के पश्चात् ब्रह्मा, विष्णु और महेश का पूजन किया गया।

तदुपरान्त स्वस्तिवाचन, पुण्याहवाचन, मातृका-पूजन आदि के साथ

ही व्रत का आरम्भ किया । मङ्गल-कलश पर गोलोकनाथ परब्रह्म श्रीकृष्ण का आवाहन कर षोडशोपचार से उनका अत्यन्त भक्तिपूर्वक पूजन में त्रैलोक्यदुर्लभ पदार्थ अर्पण किये गये । तदुपरान्त पुष्पांजलि एवं भावांजलि समर्पण के साथ स्तवन किया ।

तदनन्तर तिल-घृत की तीन लाख आहुतियों से शिवप्रिया ने हवन किया और फिर ब्राह्मणों, मुनियों, देवगणों एवं अतिथियों आदि को विविध प्रकार सुस्वादु दिव्य व्यञ्जनों से भोजन कराया और विप्रों को स्वर्णादि की दक्षिणाएँ दीं । सभी पार्वती जी की प्रशंसा करने लगे । चारणादि ने शिव-शिवा का यशोगान किया तथा अप्सराएँ नृत्य करने लगीं । ०

## व्रत की समाप्ति, पुरोहित का दक्षिणा याचना

इस प्रकार परम साध्वी गिरिराजनन्दिनी ने पुण्यक-व्रत का आरम्भ किया और एक वर्ष तक जब-जब जिस-जिस नियम का पालन करने का विधान था, तब-तब उस-उस नियम का निष्ठापूर्वक पालन करती रहीं । धीरे-धीरे दिन खिसकते गये और व्रत पूर्ण होने के दिन निकट आते गये । अन्तिम पन्द्रह दिनों में निराहार रहने के पश्चात् व्रत पूर्ण रूप से सम्पन्न हो गया ।

व्रत समाप्त होने पर पुरोहित ने कहा—‘सुब्रते ! आपका व्रत पूर्ण हो गया । अब मुझे दक्षिणा दीजिए ।’

पार्वती जी ने कहा—‘द्विजवर ! आज्ञा कीजिए कि आपको दक्षिणा में क्या दूँ ? मैं आपको इच्छित दक्षिणा दूँगी । ऐसी कोई वस्तु नहीं जो आपको न दी जा सके ।’

‘देवि !’ पुरोहित ने कुछ हिचकते हुए कहा—‘मेरी माँग आपको कुछ अटपटी-सी लगेगी, इसलिए सोचता हूँ कि दक्षिणा लूँ ही नहीं । किन्तु,

एक द्विविधा यह भी है कि दक्षिणा न लेने से ब्रतानुष्ठान का जो फल मिलना चाहिए, वह मिलेगा या नहीं ?'

गौरी ने कहा—‘पुरोहितजी ! कार्य की सम्पन्नता-स्वरूप दक्षिणा का दिया जाना आवश्यक होता है। फिर जो लोग देने में समर्थ न हों, उनकी बात दूसरी है, मैं तो अभीष्ट दक्षिणा देने में समर्थ हूँ, तब न देने से कार्य की पूर्ति कैसे होगी ?’

२८ पुरोहित बोले—‘देवि ! मैं इसीलिए नहीं माँगना चाहता कि कहीं आप दक्षिणा दे ही न सकें। फिर भी आपका आग्रह है तो निवेदन करता हूँ—मैं आपके पति भगवान् वृषभध्वज को दक्षिणा स्वरूप चाहता हूँ। आप उन्हीं को दक्षिणा में दे दें।’

पार्वतीजी को ऐसी दक्षिणा माँगने की आशा नहीं थी। भगवान् त्रिलोचन उनके प्राणाधार हैं, भला वह उन्हें किसी को कैसे दे सकती हैं ? फिर पुरोहित उन्हें लेकर करेंगे भी क्या ? नहीं, ये पागल तो नहीं हो गये हैं वह ?

शैलपुत्री पुरोहित की माँग पर रह-रहकर विचार करती हुई व्याकुल हो रही थीं। उनका समस्त आनन्द-उल्लास लुप्त हो गया और वे रोती-रोती मूर्छित होकर वहीं गिर गईं।

मोहनाशिनी पराम्बा को मोह-विवश एवं मूर्छित हुई देखकर समस्त उपस्थित समाज हँसने लगा। भगवान् विष्णु, कमलासन ब्रह्मा एवं दिव्य ऋषिमुनियों को भी हँसी आ गयी। तभी भगवान् श्रीहरि की प्रेरणा से उमानाथ अपनी प्राणप्रिया के पास पहुँचकर उन्हें सचेत करते हुए बोले—‘गिरिराजनन्दनि ! उठो, पुरोहित को अभीष्ट दक्षिणा देने से अवश्य ही तुम्हारा मङ्गल होगा। देखो, देवकार्य, पितृकार्य एवं नित्यनैमित्तिक कर्म भी यदि दक्षिणा-रहित होता है तो फल-रहित हो जाता है। उसके कारण कर्म-कर्ता को कालसूत्र नामक नरक की प्राप्ति होती है। तदुपरान्त

उसे दीन-हीन अवस्था के साथ शत्रुओं से भी पीड़ित होना पड़ता है। इसलिए, वह सङ्कल्प की हुई दक्षिणा उसी समय दे देनी चाहिए, अन्यथा वह दक्षिणा बढ़ती हुई कई-गुनी हो जाती है।'

पार्वती जी को चेत हो गया और उन्होंने अपने पतिदेव की उक्त बातें भी सुन लीं, किन्तु सोच-विचार करती हुई मौन खड़ी रहीं। यह देखकर भगवान् विष्णु और चतुरानन ब्रह्माजी ने भी उन्हें समझाया और कहा—‘देवि ! आपके द्वारा धर्म की रक्षा किया जाना बहुत आवश्यक है।’ धर्म ने भी कहा—‘शैलनन्दिनि ! आपने पुरोहित को अभीष्ट दक्षिणा देने का वचन दिया है, इसलिए उसे इच्छित प्रदान करके मेरी रक्षा कीजिए। क्योंकि मेरी रक्षा में ही सब प्रकार का मङ्गल होना निहित है।’

पार्वती जी को इन्द्रादि देवताओं ने भी बहुत समझाया। जब उन्होंने कोई उत्तर न दिया तो प्रमुख ऋषि-मुनियों ने उन्हें विश्वास दिलाया—‘शिवे ! आप स्वयं ही धर्म को जानने वाली हैं, उसकी रक्षा करना आपका परम कर्तव्य है। फिर हम सबके यहाँ उपस्थित रहते हुए आपका किसी भी प्रकार से अकल्याण नहीं हो सकता।’ इसपर भी उमा मौन रहीं।

तब ब्रह्मपुत्र सनत्कुमार, जो उस अनुष्ठान में पुरोहित थे, कुछ तीखे स्वर में बोले—‘देवि ! या तो मुझे अभीष्ट दक्षिणा दो, अथवा आपको अपनी दीर्घकालीन तपश्चर्या का शुभ फल भी त्याग देना होगा। क्योंकि इस महान् कर्म की दक्षिणा प्राप्त न होने पर मैं इसका फल तो प्राप्त कर ही लूँगा, अन्य सब शुभ कर्मों के फल का भी मैं अधिकारी हो जाऊँगा।’

देवी पार्वती ने व्याकुलतापूर्वक कहा—‘अपने सर्व समर्थ पति से विज्ञत करने वाले कर्म के फल से मैं कोई लाभ नहीं देखती, फिर दक्षिणा देने, धर्म की रक्षा करने और पुत्रलाभ होने में भी मेरा कौन-सा हित होगा ? मूल को न सींचकर वृक्ष की शाखा को सींचने से क्या वृक्ष हरा रह सकता है विप्रवर ? यदि प्राण ही जाने लगें तो यह देह की रक्षा से क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ?’

‘देवाधियो ! महर्षियो ! पति से अधिक पुत्र नहीं हो सकता । साध्वी स्त्रियों के प्राण तो पति ही है । सौ पुत्र एक ओर और अकेला पति एक ओर रहे तो भी पति की ही महिमा अधिक रहेगी । आप ही बतायें कि जब पति को ही दक्षिणा में दे दूँगी तो मेरे पास क्या रहेगा ? फिर पति से वश्चित होने पर पुत्र मिलता हो तो वह वस्तुतः किसी काम का नहीं । पुत्र का एकमात्र मूल पति ही है, क्योंकि वह उसी के अंश से उत्पन्न होता है । जब मूलधन ही चला जायेगा, तब विश्व में कोई भी व्यापार सम्भव नहीं होगा । इसलिए मैं तो यही समझती हूँ कि पुत्र के लोभ से पति का त्याग कोई गर्हिता नारी ही कर सकती हो तो करे, मैं नहीं कर सकती ।’

पार्वती इस प्रकार व्याकुल हुई बैठी थीं । वह पुरोहित की व्रत-समाप्ति की दक्षिणा स्वरूप अपना पति प्रदान करने के लिए प्रस्तुत नहीं हुई, इससे समस्त समाज में सज्जाटा छा गया था । सभी उपस्थित जन किंकर्त्तव्यविमूढ़ बैठे थे । किसी की भी समझ में यह नहीं आ रहा था कि उपस्थित समस्या को किस प्रकार सुलझाया जाय ?

## समस्या का समाधान त्रिलोकीनाथ ने किया

उसी समय अन्तरिक्ष से एक अत्यन्त अद्भुत रत्नादि से निर्मित दिव्य रथ उत्तरता हुआ दिखाई दिया, जो कि घननील वर्ण के पार्षदों से घिरा था । वे सभी पार्षद रत्नालङ्कारों से सुसज्जित एवं दिव्य पुष्पहारों से समन्वित थे । देवताओं, ऋषि-मुनियों, शिवगणों आदि ने देखा कि उस रथ में भगवान् त्रिलोकीनाथ चतुर्भुज रूप में विराजमान हैं, जो कि रथ से उत्तर उसी स्थान पर समागत हो रहे हैं । उनकी चारों भुजाओं में शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म स्थित थे ।

इनको समागत देखकर समस्त देवता आदि उठ खड़े हुए । ब्रह्मा, विष्णु, शिव ने उन्हें अर्ध्यादि देकर एक सर्वोत्तम सिंहासन पर विराजमान कराया और फिर सभी ने उनके अभय एवं पाप-ताप नष्ट करने वाले

पदारविन्दों में भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और गद्गद कण्ठ से उनकी स्तुति करने लगे ।

भगवान् त्रिलोकीनाथ बोले—‘देवगण ! मुझे यहाँ उपस्थित विवाद का समाधान करने के लिए ही आना पड़ा है । गिरिराजनन्दिनी पार्वती का यह व्रत केवल लोकशिक्षा के लिए ही है, अन्यथा यह तो सभी व्रतों और तपश्चर्याओं का फल प्रदान करने में स्वयं ही समर्थ हैं । इनकी माया से समस्त चराचर विश्व मोहित हो रहा है तो यह स्वयं मोह में क्यों पड़तीं ? इसलिए इनके द्वारा किया जाने वाला अनुष्ठान अपने लिए कदापि नहीं है ।

‘और, व्रतादि की समस्त विधियों के ज्ञाता, वेद-वेदाङ्गों के प्रकाण्ड विद्वान्, ईश्वर और सृष्टि के रहस्य-ज्ञान पूर्ण पारङ्गत तथा परम हरिभक्त और सर्वज्ञ महर्षि सनत्कुमार की भी अद्भुत दक्षिणा याचना का रहस्य भी यही कि व्रतानुष्ठान-कर्ता अपना पूर्ण समर्पण कर दे ! वह अपना कुछ भी न समझकर सबकुछ परब्रह्म परमात्मा का ही समझे । अनुष्ठान कराने वाला पुरोहित भी साक्षात् परब्रह्म रूप ही है, ऐसा मानता हुआ ही किसी वस्तु के प्रति मोह न रहे । इसलिए इनके द्वारा दक्षिणा में व्रतानुष्ठान करने वाली साध्वी से उसकी सर्वाधिक प्रिय वस्तु माँग लेना भी उचित ही है ।’

इसके पश्चात् उन्होंने गिरिराजनन्दिनी को सम्बोधित किया—‘हे शिव ! शिवप्रिये ! तुम्हें अपने पति भगवान् नीलकण्ठ को प्रदान कर पुण्यक-व्रत पूर्ण कर लेना चाहिए । नियम यह है कि दक्षिणा में प्रदत्त कोई भी पदार्थ उसका समुचित मूल्य देकर वापस लिया जा सकता है । इसलिए समुचित मूल्य देकर तुम अपने प्राणनाथ को वापस ले लेना । भगवान् त्रिलोकीनाथ के शरीर जैसे शिव हैं, वैसे गौ भी हैं । इसलिए पुरोहित को अपने पति के मूल्य में गौ देकर अपना पति लौटा लेना ।’

यह कहकर भगवान् त्रिलोकीनाथ तुरन्त अन्तर्धान हो गए । उनके साथ

ही वह रथ और पार्षदगण भी अदृश्य हो गये। भगवान् के मुखारविन्द से सुने हुए इन वचनों ने सभी समस्या तथा समस्त विवाद सुलझा दिया, इस कारण समस्त उपस्थित समुदाय हर्ष-विभोर हो गया। शैलनन्दिनी भी हर्षित होती हुई उठीं और अपने प्राणनाथ चन्द्रमौलि को दक्षिणा में देने को तत्पर हो गई।

पुरोहित ने हवन की पूर्णाहुति कराके दक्षिणा माँगी तो शिवा ने अपने प्राणधन शिव को दक्षिणा रूप में प्रदान कर दिया। उपस्थित जनसमूह की हर्ष-ध्वनि के मध्य महर्षि सनत्कुमार ने 'स्वस्ति' कहकर दक्षिणा ग्रहण कर ली।

## पार्वती के अनुपम धैर्य की जाँच

समस्त कार्य पूर्ण हो चुका। देवी पार्वती ने पुरोहित से निवेदन किया—'विप्रवर ! मेरे पति में और गौ में समानता है। फिर भी मैं आपको एक लाख अत्यन्त सुन्दर, श्रेष्ठ, दुधारू गौएँ दूँगी, जो कि साक्षात् कामधेनु के समान हैं। इनके बदले में आप मेरे प्राणधन को मुझे लौटा दीजिए।'

सनत्कुमार बोले—'देवि ! मैं तो ब्राह्मण हूँ कोई व्यापारी नहीं। इसलिए मैं आपके द्वारा दी जाने वाली एक लाख गौओं का क्या करूँगा ? उल्टे उनके पालन की समस्या मेरे समक्ष आ खड़ी होगी और उस स्थिति में मैं अपने नित्य नैमित्तिक कर्म भी ठीक प्रकार से करने में असमर्थ रहूँगा। इसलिए मैं अपना भला इसी में समझता हूँ कि इन अहिभूषण भगवान् को ही अपने साथ रखता हुआ इन्हें आगे करके तीनों लोकों का भ्रमण करूँ। उस समय इनके अद्भुत रूप को देखकर बालक-बालिकाएँ प्रसन्न हो-होकर ताली बजाएँगे और अट्टहासपूर्वक हो-हो करते चलेंगे।'

यह कहकर महर्षि ने उमानाथ से कहा—'आशुतोष ! अब आप मेरे

अधिकार में हैं, इसलिए यहाँ आकर बैठिए।' यह सुनकर भगवान् शङ्कर सनत्कुमार के पास जाकर शांत बैठ गए।

अब तो देवी शैलपुत्री को बड़ी व्याकुलता हुई। उन्हें यह आशङ्का न थी कि सीधा-सादा दिखाई देने वाला ब्राह्मण इतना हठ पर उतर आएगा और भगवान् त्रिलोकीनाथ के वचनों पर भी ध्यान नहीं देगा। और फिर यह भी दुर्भाग्य की ही बात है कि मुझे न तो अभीष्टदेव का दर्शन ही मिला और न व्रत का फल ही। तब क्या किया जाए?

'परन्तु समस्या का समाधान था ही नहीं तो उन्होंने सोचा-इससे तो प्राण त्याग करना ही श्रेष्ठ है। जब कोई उपाय दिखाई न दे तो यही अन्तिम अस्त्र रह जाता है। किन्तु, कहते हैं कि आत्मधात पाप है, तो उसका भी जो फल मिलेगा भोग लूँगी।' ऐसा निश्चय कर गिरिजा प्राण त्याग के लिए प्रस्तुत हुई।

उनका निश्चय समझने में ब्रह्मा-विष्णु को देर न लगी। उन्होंने समझाया—'देवि ! विपत्ति के समय धैर्य का त्याग ही विनाश का प्रमुख कारण होता है। किसी भी संकट से मुक्ति पाने का उपाय आत्मधात नहीं है, वरन् विवेक बुद्धि से काम लेना है।'



२१

### ३. तृतीय अध्याय

## पार्वती का आत्मधात के लिए तैयार होना

गिरिराजपुत्री ने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया और वह अपने निश्चय को कार्यरूप में परिणत करने को ही थीं कि अन्तरिक्ष के शून्य में सहसा करोड़ों सूर्यों के सम्मिलित समूह के समान एक परम-उत्कृष्ट

तेजपुञ्ज प्रकट हो गया, जिसके कारण समूचा कैलास पर्वत और समस्त दिशाएँ प्रकाशमान हो उठीं। वह तेज-मण्डल असीमित अनन्त था। यह देखकर समस्त देवता और ऋषि-मुनि समझ गए कि भगवान् हैं, इसलिए सभी भक्तिभाव से प्रणाम करके गद्गद कण्ठ से उनकी स्तुति करने लगे।

देवताओं ने कहा—‘हे प्रभो ! आप असीमित और अनन्त की यथार्थ रूप से स्तुति करने में तो हम पूर्णरूपेण असमर्थ हैं, क्योंकि आप समस्त विश्व के परमाश्रय, मायामय और माया से परे भी हैं। हे नाथ ! यह दृश्यमान जगत् आपका ही महिमामय स्वरूप है। कोई भी दृश्यमान या अदृश्य पदार्थ किसी भी अवस्था में आपसे भिन्न नहीं हो हो सकता। प्रभो ! हे जगदीश्वर ! इस समय जो विकट परिस्थिति उत्पन्न हुई, उससे आप ही उबार सकते हैं।’

ब्रह्मा, विष्णु, महेश ने कहा—‘प्रभो ! आप समस्त देवता, ऋषि-मुनि एवं हम त्रिदेवों के भी उत्पत्तिकर्ता हैं। हम सब आपके ही संकेतानुसार सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और प्रलय किया करते हैं। हे प्रभो ! हे नाथ ! हे जगदीश्वर ! आप हमपर कृपा कीजिए।’

धर्म ने निवेदन किया—‘त्रिलोकीनाथ ! आपकी आज्ञा से ही समस्त धार्मिक और न्यायवान् पुरुष मेरी रक्षा में तत्पर रहते हैं। हे प्रभो ! यह सब आपकी महिमा का प्रभाव है।

अन्य देवताओं ने कहा—‘हे नाथ ! आप वाणी से परे होने के कारण अकथनीय, स्वेच्छामय, ज्ञानमय एवं ज्ञानातीत हैं, तब आप समस्त वेदों के कारण स्वच्छ ज्ञानमूर्ति का स्तब्धन किस प्रकार किया जाय ? हे प्रभो ! हम सब आपके कलांश होने के कारण आपकी सम्पूर्ण कलाकारी को ठीक प्रकार से जानने में भी समर्थ नहीं हैं।’

ऋषियों ने कहा—‘मोक्षप्रद प्रभो ! आप समस्त कल्याणों के आश्रय, सिद्धियों के प्रदाता तथा बुद्धि के प्रेरक हैं। आपकी ही प्रेरणा से हम सब केवल आपके ध्यान में अहर्निश तल्लीन रहते हैं। फिर भी आप करुणामूर्ति के साक्षात् दर्शन नहीं कर पाते। हे प्रभो ! हम आपको

नमस्कार करते हैं। आपकी जय हो, जय हो।'

तभी सर्वत्र जयघोष होने लगा। सभी दिशाएँ भगवान् परब्रह्म श्रीकृष्ण के जय-जयकार से गूँज उठीं। तभी जगज्जननी पार्वतीजी ने परमात्मा के स्वरूप का गुणगान करते हुए निवेदन किया—‘सर्वान्तर्यामी ! आपका अद्भुत तेज करोड़ों सूर्यों को लजाने में समर्थ है। आपके स्वरूप का वर्णन कोई भी नहीं कर सकता। आप अणु-अणु में व्याप्त एवं परम महिमामय हैं। आप इच्छा मात्र से ही सभी कुछ करने में समर्थ हैं, इसलिए आप तो मुझे जानते हैं, किन्तु मैं आपको यथार्थ रूप में कैसे जान सकती हूँ ? हे प्रभो ! मैंने पुत्र की कामना से पुण्यक-ब्रत का अनुष्ठान किया है, किन्तु इस अनुष्ठान की समाप्ति पर विधानानुसार अपने प्राणपति को दक्षिणा रूप में दिया जाता है, यह कार्य अत्यन्त दुष्कर है। कोई साध्वी नारी पुत्र के लिए अपने पति का त्याग कैसे कर सकती है ? हे करुणामय ! हे गोलोकनाथ ! आप मेरी इस शोचनीय स्थिति को समझकर मुझपर दया कीजिए।'

## श्रीकृष्ण के ध्यान में पार्वती का मग्न होना

गर्भवती गिरिजा भगवान् श्रीकृष्ण के ध्यान में मग्न हो गई। उन्हें उस समय अपने तन-मन की सुधि नहीं थी। उनकी दृष्टि अन्तरिक्ष में उभरे हुए तेजपुञ्ज पर टिकी थी।

तभी उन्हें उस अनन्त तेज-राशि के मध्य अद्भुत रूप-लावण्ययुक्त अत्यन्त मनोहर स्वरूप के दर्शन हुए। मुख-मण्डल पर अवर्णनीय तेज, अधरों पर सरल मुसकान, हाथ में अमृत की वर्षा करने वाली मुरली, कण्ठ में मणियों और वनपुष्पों के हार, मस्तक पर स्वर्ण-रत्नमय किरीट, कानों में दिव्य कुण्डल, विशाल भाल पर तिलक, नीलवर्ण देह पर पीताम्बर, विभिन्न अङ्गों में रत्नाभरण, कटि में कञ्चन मेखला, चरणों में क्वणित किङ्किणी और किरीट पर मोर का पङ्कु सुशोभित था। वे भगवान्

दिव्य एवं भव्य रत्न-सिंहासन पर विराजमान थे । उनके पीछे सखाजन चँवर डुला रहे थे ।

शैलनन्दिनी ने उस भुवनमोहन स्वरूप को देखा तो एकटक देखती ही रह गई । उनके मन में हुआ कि पुत्र मिले तो इसी रूप के समान सुन्दर हो । उन्होंने सुना—‘गिरिजे ! तुम्हारा व्रत सफल हो गया । तुमने जैसे पुत्र की कामना की है, वैसा ही प्राप्त होगा ।’

गिरिराजनन्दिनी के हर्ष की सीमा न रही, उन्होंने निवेदन किया—‘प्रभो ! आपने व्रत की सफलता स्वरूप अपने समान पुत्र प्राप्ति का वर तो दे दिया, किन्तु जो मूल समस्या है, उसका तो समाधान ही नहीं हुआ । हे परमात्मदेव ! मुझपर कृपा कीजिए ।’

पार्वती को लगा कि भगवान् त्रिभुवन हँसते हुए कह रहे हैं—‘पार्वती ! यह समस्या तो सामयिक है । स्थायी नहीं । इसका प्रतिकार तो स्वतः ही हो जायेगा । तुम कोई चिन्ता न करो, तुम्हारी जो भी कामनाएँ हैं, वे सभी पूर्ण हो गई समझो । निश्चय ही तुम पूर्ण काम हो गई हो गिरिराजनन्दिनी ।

और तब शैलजा ने उन परम प्रभु को प्रणाम किया और वे परमात्मदेव सबके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गए । सहसा अन्तरिक्ष में प्रकट वह तेजपुञ्ज तिरोहित हो गया ।

अब महर्षि सनत्कुमार ने भगवान् विष्णु की प्रेरणा से शैलनन्दिनी के प्रति कहा—‘जगञ्जननी ! तुम्हारे पति तो निरे औघड़ बाबा हैं, यह मेरे किसी काम के नहीं । मैंने विचार करके देखा कि इन्हें लिये-लिये मैं कहाँ-कहाँ फिरूँगा ? इसलिए तुम इन्हें अपने ही पास रखो ।’

देवी पार्वती की प्रसन्नता की सीमा न थी । उन्होंने पुरोहित से निवेदन किया—‘विप्रश्रेष्ठ ! आप बड़े कृपालु हैं । मैं आपकी महानता को नहीं समझ सकी थी । अब आप मुझे आज्ञा दीजिए कि इनके बदले में क्या वस्तु प्रदान करूँ ?’

सनत्कुमार बोले—‘देवि ! ब्राह्मण को वैसे तो कुछ भी अभीष्ट नहीं है, फिर भी व्रत की सम्पन्नता-स्वरूप और उसे फलवान् बनाने के लिए दक्षिणा लेना आवश्यक ही है। इसलिए कपिला गौ ही दे दीजिए।’

शैलनन्दिनी ने सनत्कुमार को कपिला गौओं का दान किया और अनेक बहुमूल्य रत्नाभूषण तथा दिव्य वस्तुएँ प्रदान कीं तथा अन्य समस्त ब्राह्मणों, ऋषि-मुनियों, बन्दीजनों एवं भिक्षुकों आदि को उनकी अभीष्ट वस्तुएँ दीं और सुखादु पदार्थों से भोजन कराया। सभी सब प्रकार से सन्तुष्ट होकर उनकी प्रशंसा करते हुए आशीर्वाद देने लगे।

तदुपरात् देवी पार्वती ने अपने प्राणपति का अत्यन्त प्रीतिपूर्वक पूजन किया। उस समय दिव्य वाद्य बजने लगे, गन्धर्व गाने लगे और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। सुमुखियाँ मङ्गल गीत गाने लगीं। सर्वत्र आनन्द-उल्लास छा गया।

इस प्रकार भगवती गिरिराजनन्दिनी का पुण्यक-व्रत समाप्त हुआ। इसके पश्चात् उन्होंने शिवजी के साथ स्वयं भी भोजन किया। तदुपरात् समस्त उपस्थित जनों को मुख-शुद्धि के लिए ताम्बूल दिये गये और शिव-शिवा ने भी ताम्बूलों का सेवन किया। इसके पश्चात् उत्सव समाप्त हुआ और सभी आगजतन अपने-अपने स्थानों को लौट गये।



## ४. चतुर्थ अध्याय

# विप्रवेश धारण कर प्रभु का आना

उत्सव समाप्त होने पर शिव-शिवा अन्तःपुर में चले गये। तभी उनके द्वार पर दीन-हीन, कुत्सित ब्राह्मण आकर पुकारने लगा—‘शम्भो !

हे सर्वकामनादायक प्रभो ! हे दीनबन्धो ! मैं भूख-प्यास से अत्यन्त व्याकुल एक दीन-हीन, दुर्बल ब्राह्मण हूँ। भोजन की इच्छा से ही बहुत दूर से चलकर यहाँ आया हूँ।'

उसके सिर के केश रुक्ष, उलझे हुए, नये वस्त्र मैले-कुचैले थे। किन्तु दाँत स्वच्छ और ललाट पर उज्ज्वल तिलक लगा था। उसके हाथ में एक डणडा था, जिसके सहारे खड़ा हुआ पुकार लगा रहा था—‘अरे शिवजी ! क्या कर रहे हो प्रभो ! हे गिरिराजनन्दिनी ! तुम्हारे द्वार पर याचक ब्राह्मण भूखा पुकार रहे हैं और तुम सुनतीं ही नहीं। भला सर्वसम्पत्ति-सम्पन्न माता के रहते हुए उसका बालक भूख से व्याकुल पुकारता रहे, यह कैसी विचित्र बात है !’

ब्राह्मण की पुकार सुनकर शिव-शिवा बाहर निकले। उन्हें देखते ही उस दीन ब्राह्मण ने उनके चरणों में प्रणाम किया और स्तुति करने लगा—‘आशुतोष प्रभो ! मैं भूख से अत्यन्त व्याकुल हूँ तथा आप समस्त धन-धान्यों से सम्पन्न एवं समर्थ हैं। हे दीनबन्धो ! मेरी इस दशा को देखकर मुझपर कृपा कीजिए। हे नाथ ! आपके समान कोई दाता नहीं है। हे माता ! आपके समान कोई दयावती माता नहीं हो सकती।’

विप्र के दीनतायुक्त वचन सुनकर भगवान् आशुतोष प्रसन्न हो गए। उन्होंने पूछा—‘द्विजवर ! आप कहाँ से आ रहे हैं ? आपका शुभ नाम क्या है। कृपया सभी बातें बताने का कष्ट करें।’ करुणामयी शैलनन्दिनी ने भी पूछा—‘वेदपारंगत विप्रश्रेष्ठ ! मेरा अत्यन्त सौभाग्य है जो आप मेरे यहाँ इतना कष्ट करके पथारे हैं। वस्तुतः आप जैसे अतिथि के स्वागत-सत्कार एवं सेवा की बड़ी महिमा कही गई है।’

ब्राह्मण ने कहा—‘हे माता ! आप तो साक्षात् वेदमयी हैं। आप मुझ क्षुधार्त को अन्न प्रदान कीजिए। क्योंकि मैं बहुत दूर से चलकर यहाँ आने के कारण अत्यन्त थका हुआ हूँ। वैसे भी मैं उपवास-व्रती एवं रोग से पीड़ित हूँ। बस, यही मेरा स्वागत-सत्कार एवं पूजन है।’

भगवती शैलजा ने कहा—‘विप्रिवर ! मुझे आज्ञा कीजिए कि आपको कौन-सा पदार्थ प्रस्तुत करूँ ? आपकी जो इच्छा होगी, वही पदार्थ आपकी सेवा में उपस्थित करने का प्रयत्न करूँगी । आप कुछ बताइए तो सही ।’

ब्राह्मण ने कहा—‘क्या बताऊँ जगज्जननि ! मैं आप पुत्रविहीना माता का ही अनाथ पुत्र हूँ । मुझे ज्ञात हुआ है कि आपने अभी ही व्रतों में सर्वश्रेष्ठ एवं महान् पुण्यक-व्रत का अनुष्ठान पूर्ण किया है । उसके समायोजनार्थ अनेक दुर्लभ सामग्रियाँ इकट्ठी की गई होंगी । अद्भुत पवित्र और मिष्ठान बनाये गये होंगे तथा स्वच्छ सुवासित शीतल जल भी पीने के लिए मँगाया गया होगा । मुख-शुद्धि के लिए ताम्बूल भी प्रस्तुत किये गये होंगे । माता ! उन-उन समस्त वस्तुओं से मेरा पूजन कीजिए और वे सब पदार्थ मुझे इतने खिलाइए, इतने खिलाइए कि मेरा पेट तन जाये । उन पदार्थों को खाकर मैं लम्बोदर हो जाऊँ ।’

पार्वती जी उस ब्राह्मण की बात सुनती हुई कुछ आश्चर्य से उसका मुख देखने लगीं । तभी ब्राह्मण ने भगवान् चन्द्रमौलि की ओर देखते हुए शैलजा से कहा—‘जननि ! सम्भवतः आप मेरे वचनों पर विश्वास नहीं कर रही हैं, किन्तु मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वह अक्षरशः सत्य है । आपके प्राणप्रिय पति सब पर शीघ्र ही प्रसन्न हो जाने के कारण आशुतोष कहलाते हैं । वे विश्व में विद्यमान समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी होने के कारण सभी कुछ प्रदान करने में समर्थ हैं और आप भी समस्त धनों और यशों की स्वामिनी तथा साक्षात् लक्ष्मी स्वरूपिणी होने के कारण समस्त सत्कीर्तियों को प्रदान करने में समर्थ हैं । इसलिए आप मुझे अत्यन्त रमणीय सिंहासन पर विराजमान कराइए, मुझे बहुमूल्य एवं दिव्य रत्नालंकार पहिनाइये, शुद्ध सुन्दर वस्त्र धारण कराकर भगवान् श्रीहरि का देव-दुर्लभ मन्त्र प्रदान कीजिए । भगवान् त्रिलोकीनाथ की भक्ति तथा

मृत्युञ्जय संज्ञक ज्ञान दीजिए। इसके अतिरिक्त हे जननि ! सुख देने वाली दान-शक्ति और समस्त सिद्धियों की भी प्राप्ति कराइये।'

पार्वती उसे इस प्रकार देख रही थीं जैसे उसकी बातों को समझ ही न रही हों। विप्र भी उनकी भाव-भंगी को देखता-समझता हुआ कहता चला जा रहा था—‘माता ! मैं तपश्चर्या में रत रहने और उत्तम धर्म का पालन करने वाला हूँ। मुझे जन्म-मरण और रोग-जरा आदि स्पर्श भी नहीं कर सकते और न मैं उस प्रकार के कर्मों को करूँगा ही, जिनके करने से जन्म-जरा-व्याधि और मृत्यु का प्रकोप हो सकता हो।’

अब ब्राह्मण ने जगत् की असारता पर प्रकाश डाला—‘जगदीश्वरि ! यह जगत् आपके आश्रय में रहता हुआ भी असार ही है। जो इसकी असारता को जान लेता है, वह व्यापोह में नहीं पड़ता। मैंने जगत् की यथार्थता का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। इसलिए मुझे इसके कारण भूख, काम-क्रोध, लोभ-मोह व्याप्त नहीं कर सकते। फिर आपकी कृपा होने पर तो जगत् के कारण रूप इन विकारों का अस्तित्व रह नहीं सकता।’

‘हे माता ! आप समस्त कर्मों का फल प्रदान करने वाली हैं। आपने स्वयं नित्या, सत्या और सनातनी होते हुए भी लोक-शिक्षा के लिए तपश्चर्या, व्रतोपवास और पूजनादि कार्य सम्पन्न किए हैं और यही कारण है कि आपके अंक में गोलोकवासी परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्ण प्रत्येक कल्प में प्रकट होकर क्रीड़ा किया करते हैं।’

## विप्र का अन्तर्धान होना शिशुरूप में प्राकदय

शिव-प्रिया भवानी कुछ कहना ही चाहती थीं कि तभी वे वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, तेजोमय मुख-मण्डल वाले, किन्तु कृशकाय ब्राह्मणदेवता देखते-देखते अन्तर्धान हो गये। पार्वतीजी आश्चर्य से सोच ही रही थीं कि यह क्या हुआ ? कहाँ गये वे श्रेष्ठ विप्र ?

उधर वह ब्राह्मण अन्य कोई नहीं गोलोकपति जनार्दन ही थे जो अदृश्य रूप से अन्तःपुर में प्रविष्ट होकर माता पार्वतीजी की शव्या पर नवजात शिशु रूप में जा लेटे, जो अद्वितीय सुन्दर एवं दिव्य तेज से सम्पन्न थे। सभी दिशाएँ उनसे प्रकाश प्राप्त करके जगमगा रही थीं तथा उनकी रूप-छटा भी अद्भुत थी-

“शुद्धचम्पकवर्णाभः कोटिचन्द्रसमप्रभः ।

मुग्धदृश्यः सर्वजनैश्चक्षुरश्मिविवर्द्धकः ।

अतीवसुन्दरतनुः कामदेवविमोहनः ।

मुखं निरुपमं विभ्रच्छारदेन्दुविनिन्दकम् ॥”

‘उसका वर्ण चम्पक के समान और तेज करोड़ों चन्द्रमाओं के समान था ! वह सुखपूर्वक देखने के योग्य और सभी की नेत्र-ज्योति बढ़ाने वाला था। उसका शरीर कामदेव को भी मोहित करता था तथा मुख अनुपम और शरद के पूर्णचन्द्र को भी निन्दित करने में समर्थ था। उसके सुन्दरतम नेत्रों की शोभा के समक्ष मनोहर कमल भी तिरस्कृत हो रहा था। लाल-ओष्ठ पक्व विष्वफल को लज्जित कर रहे थे !’

इधर तो उनकी शव्या में विद्यमान त्रैलोक्य भर में अनुपम शिशु अपने हाथ-पाँव उछाल रहा था, उधर पार्वती जी को उस ब्राह्मण के सहसा अदृश्य हो जाने से बड़ा दुःख हुआ। उन्होने त्रिलोचन प्रभु से कहा—‘प्राणनाथ ! उस अतिथि ब्राह्मण को तो देखिए, वह कहाँ चला गया ! घर के द्वार पर आये हुए अतिथि का द्वार से निराश होकर लौट जाना शुभ नहीं होता। वह भूख से पीड़ित हुआ अतिथि बिना कुछ प्राप्त किये चला गया !’

१० तभी आकाशबाणी सुनाई दी—‘जगज्जननि ! व्याकुल न हो । वे तो स्वयं परात्पर ब्रह्म ही थे, जो तुम्हारे पुत्र रूप से पर्यक्त में क्रीड़ा कर रहे हैं। देखो, तुम्हारे द्वार पर कोई अतिथि ब्राह्मण नहीं, वरन् साक्षात् जनार्दन ही पधारे थे। यह सब तुम्हारे द्वारा किए गये महान् पुण्यक-व्रत का ही

प्रभाव था । अतएव तुम तुरन्त अपने घर जाकर करोड़ों कामदेवों का ३  
तिरस्कार करने वाले रूप-लावण्य युक्त राशि अपने पुत्र को देखो ।'

आकाशवाणी सुनकर पार्वती स्वस्थ-चित्त हुई और उन्होंने भीतर जाकर अपने पुत्र को देखा । वह अत्यन्त सुन्दर एवं तेजस्वी था । उसके दिव्य अंगों से जो अनुपम तेज निकल रहा था, उससे समस्त अन्तःपुर प्रकाशमान हो रहा था ।

उन्होंने उस सुन्दरतम नवजात शिशु को देखा तो हर्ष-विभोर हो उठीं और तुरन्त ही शिवजी के पास जाकर बोलीं—‘प्राणेश्वर ! कृपा कर घर के भीतर चलकर देखने का कष्ट कीजिए । हे नाथ ! आप जिस सद्यःफलदायक स्वरूप का ध्यान किया करते हैं, उसी के पुत्र रूप में दर्शन कीजिए ।’

पार्वती से पुत्र के प्राकट्य का संवाद सुनकर समस्त हर्षों के आश्रय-स्थान भगवान् आशुतोष अत्यन्त हर्षित हुए । उन्होंने शव्या पर लेटे हुए अपने पुत्र को देखा जो छत की ओर इकट्ठक निहार रहा था । शशिभूषण उस अत्यन्त अद्भुत रूप को देखकर आश्चर्य से सोचने लगे—‘अरे ! यह शिशु तो उसी मूर्ति का प्रतिरूप है, जिसका मैं सदैव ध्यान किया करता हूँ । अवश्य ही वे परात्पर परमात्मा मेरे पुत्र में व्यक्त हुआ है ।’

उन्होंने पार्वती से कहा—‘प्रिये ! तुम्हारा सौभाग्य है, जो ऐसे अद्भुत पुत्र की तुम्हें प्राप्ति हुई है ।’ जगज्जननी ने अपने प्राणनाथ की बात के अनुमोदन स्वरूप शिशु को तुरन्त ही गोद में उठा लिया और वह उसका मुख चूमती हुई बोलीं—

“सम्प्राप्यामूल्यरत्नं त्वां पूर्णमेव सनातनम् ।

यथा मनो दरिद्रस्य सहसा प्राप्य सद्बन्धनम् ॥

कन्ते सुमिरमायाते प्रोषिते योषितो यथा ।

मानसं परिपूर्णं च बभूव च तथा मम ॥”

‘हे पुत्र ! जैसे सहसा अमूल्य रत्नादि शुभ धन प्राप्त होने पर दरिद्र का मन प्रसन्न हो उठता है, उसी प्रकार तुम सनातन पुरुष रूप अमूल्य रत्न के पुत्र रूप में प्राप्त होने से मेरी भी कामना पूर्ण हो गई है। जैसे चिरकाल से परदेश में निवास करने वाले प्रियतम के सहसा घर लौट आने पर स्त्री का मन उल्लास से भर जाता है, वैसी ही मेरी मन-स्थिति हो रही है।’

इस प्रकार आनन्दमग्न हुई गिरिराजनन्दिनी नवजात शिशु रूप परात्पर ब्रह्म को प्यार से अपनी गोद में खिलाने लगीं तथा पुत्र-स्नेह के कारण उनके स्तनों में दूध उमड़ने लगा और वे शिशु को दूध पिलाने लगीं। तदुपरान्त भगवान् श्रिलोचन ने अत्यन्त मुदित मन से पार्वती से अपने पुत्र को ले लिया और गोद में लिटाकर खेलाने लगे। उन्होंने मन-ही-मन नमस्कार करके निवेदन किया—‘प्रभो ! आपने मेरी चिर प्रतीक्षित साधना पूरी कर दी है। आपकी इस कृपा से मैं सब प्रकार से धन्य हो गया हूँ। परन्तु, हे प्रभो ! यह प्रार्थना है कि मैं आपकी माया में विमोहित होकर कहीं आपके यथार्थ रूप को भूल न जाऊँ।’

## पुत्रोत्सव तथा जातकर्म वर्णन

अब कैलास-शिखर स्थित शिव-सदन के प्रांगण में पुत्रोत्पत्ति की प्रसन्नता में उत्सव मनाया जाने लगा। देवगण, किन्नरगण और अप्सराओं ने नृत्य-गायनादि आरम्भ किया। सुमधुर बाजे बजने लगे। नारियाँ मंगल गीत गाती हुई उस अद्भुत आयोजन में सम्मिलित हुईं।

भगवान् शंकर ने शिशु का जातकर्म-संस्कार कराया। ब्राह्मणों ने शिशु के महिमाशाली होने का बखान करते हुए चिरायु होने का आशीर्वाद दिया। तदुपरान्त ब्राह्मण भोजन के पश्चात् अभिलिष्ट दक्षिणा दी गई। वन्दीजनों और भिक्षुकों को भी उनकी इच्छानुसार धन-रत्नादि दिए गये।

हिमाचल ने अपने दौहित्र के जातकर्म-संस्कार उत्सव के अवसर पर

ब्राह्मणों को एक लाख विशिष्ट रत्न, एक सहस्र श्रेष्ठ गजराज, तीन लाख दिव्य तुरङ्ग, दस लाख कपिला गौएँ, पाँच लाख स्वर्ण-मुद्राएँ एवं बहुत सारे हीरे-मोती-जवाहरात, बहुमूल्य रत्नालंकार एवं वस्त्रादि प्रदान किये।

उस अवसर पर भगवान् विष्णु ने भी हर्षातिरेक में भरकर प्रमुख दिव्य मुनियों का पूजन किया और कौस्तुभ मणि दान में दे दी। फिर पार्वती के पुत्र रूप में परब्रह्म के प्रकट होने के उपलक्ष्य में उन्होंने वेद-संहिताओं और पुराणों का पाठ कराया और अनेक मांगलिक कार्य कराये।

ब्रह्माजी ने भी उस उत्सव में भाग लेकर ब्राह्मणों को अत्यन्त दुर्लभ वस्तुएँ दान कीं तथा नवजात शिशु को आशीर्वाद दिया। देवराज इन्द्र ने भी दिव्याभरण दान दिये। फिर अन्यान्य देवताओं, गन्धर्वों, पर्वतों आदि ने भी दान में अद्भुत वस्तुएँ दीं। सूर्य और धर्म ने तथा देवियों ने भी विविध पदार्थों के दान किए। इस प्रकार उस समय ब्राह्मणों को जो-जो वस्तुएँ दी गई उनके मूल्य का अनुमान किया जाना भी असम्भव था।

भगवती गायत्री, सावित्री, शारदा, रमा, ब्रह्मणी आदि ने भी दुर्लभ वस्तुओं का दान किया था। स्वयं माता पार्वती जी ने असीमित धन और गवादि पशुओं एवं वाहनों का दान कर दिया। कुबेर ने भी ब्राह्मणों को बहुत-सा धन प्रदान किया।

इस प्रकार भगवान् शङ्कर के यहाँ परब्रह्म परमात्मा के पुत्र रूप में प्रकट होने पर समस्त देवताओं ने आनन्दोत्सव मनाया और बालक के मंगलार्थ जो कुछ दानादि क्रिया की जा सकती थी, वह सब की गई। सभी ने ब्राह्मणों को दान दिये और फिर बालक को चिरायु होने का आशीर्वाद दिया। ब्रह्मा जी बोले—वत्स ! तुम यथाशीघ्र यशस्वी बनो और समस्त देवताओं में प्रथमपूजा के अधिकारी होओ।'

विष्णु ने कहा—‘शिशु ! तुम चिरंजीवी रहो । ज्ञान में अपने पिता शिवजी के समान और पराक्रम में मेरे समान होओ । तुम समस्त सिद्धियों के अधीश्वर भी होगे ।’

धर्म ने कहा—‘तुम सदैव धर्म में स्थित रहो । तुम्हारे द्वारा कभी कोई अधर्म-कार्य न हो वरन् जो अधर्म करने वाले हों, उनके विनाश में सदैव तत्पर रहो ।’

इन्द्र ने कहा—‘बालक ! तुम देवताओं के सदैव रक्षक रहो । विवाद उपस्थित होने पर देवपक्ष का समर्थन करो और असुरों एवं दुष्कर्मियों को उत्पीड़ित करो ।’

इस प्रकार अपनी बुद्धि के अनुसार लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री, शिव, हिमालय, मेनाक, पृथ्वी एवं पार्वती ने भी इस नवजात शिशु को आशीर्वाद दिया तथा उसके ऐश्वर्यवान्, बुद्धि एवं सिद्धिनिधान, विद्वान् एवं पुण्यवान् होने की मंगलकामना की तथा मनोहर रूप-लावण्य सम्पन्न पत्नी, महान् कवित्व-शक्ति धारण एवं स्मरण-शक्ति की प्राप्ति का वर प्रदान किया ।

फिर यह कामना व्यक्त की कि वह हरि-भक्तों और सज्जनों का शरणदाता, विज्ञनाशक, धर्म के समान स्थिर, शिव के समान परमयोगी, समस्त प्राणियों पर दया करने वाला, मृत्यु पर भी विजय प्राप्त करने वाला, सभी कार्यों में परम निपुण, वेद-वेदांगों में पारंगत एवं सिद्धि कामियों को सिद्धिदाता बने ।

इस प्रकार देवताओं और देवियों द्वारा शुभ कामनाएँ एवं आशीर्वाद दिये जाने के पश्चात् समागत ऋषियों ने भी अनेक प्रकार के शुभ आशीर्वाद प्रदान किये । फिर सभी ब्राह्मणों ने भी हार्दिक रूप से शुभाशीष दी और वन्दी जनों ने भी अपनी-अपनी ओर से मंगल कामनाएँ व्यक्त कीं ।

तदुपरान्त भगवान् श्रीहरि, कमलासन ब्रह्मा, आशुतोष शङ्कर एवं अन्यान्य समस्त देवगण यथोचित स्थानों पर विराजे। मुनिजनों को भी उनके तदनुसार उच्चासन दिये गए। इस प्रकार वहाँ अद्भुत समाज जुड़ा और सभी आनन्दपूर्वक सभा की शोभा बढ़ाने लगे।



॥

## ५. पञ्चम अध्याय

### गणपति के दर्शनार्थ शनिश्चर का कैलास जाना

सूतजी बोले—‘हे शौनक ! अब मैं एक अन्य उपाख्यान सुनाता हूँ, जिसमें भगवान् महागणेश्वर के दर्शनार्थ शनिश्चर का आगमन हुआ था। शनि ने सोचा—‘दीर्घकाल से मैं उनके दर्शन से बच्चित रहा हूँ इसलिए स्वयं ही कैलास-शिखर पर चलना चाहिए। वहाँ शिव-शिवा के दर्शनों का लाभ सहज में ही हो जायेगा।’

ऐसा निश्चय कर शनिदेव ने कैलास की ओर प्रस्थान किया। शिवजी की सभा लगी थी। इधर-उधर अनेकानेक देवगण, त्रृष्णिगण, सिद्धगण आदि बैठे हुए थे। उस समय भगवान् शिवजी मध्य सिंहासन पर विराजमान थे। साक्षात् भगवान् श्रीहरि और ब्रह्माजी भी उस समाज में उपस्थित थे। ब्रह्माजी के सामने समस्त लोकों का साक्षी धर्म मूर्तिमान खड़ा था।

उसी समाज में देवराज इन्द्र भी एक श्रेष्ठ आसन पर आसीन थे। पार्वती जी के पिता हिमाचल भी पधारे हुए थे और अनेक शिवगण उनके सत्कारादि में लगे हुए थे। सूर्य और चन्द्रमा दोनों ही इधर-उधर बैठे हुए उस समय प्रकाश फैला रहे थे।

“ननर्त् नर्तकश्रेणी जगुर्गन्धर्वकिन्नराः ।

श्रुतिसारं श्रुतिसुखं तुष्टुवुः श्रुतयो हरिम् ॥”

नृत्य करने वालों की मण्डलियाँ नृत्य में तत्पर थीं । गन्धर्वगण और किन्नरगण गायन-वादन कर रहे थे । श्रुतियाँ सुनने में सारभूत एवं सुरदायक भगवान् श्रीहरि के स्तवन में निमग्न थीं ।

इस प्रकार कैलास-शिखर पर आनन्द-उत्सव मनाया जा रहा था । ऐसे ही समय में भगवान् सूर्यदेव के प्रतापी पुत्र ग्रहेश्वर शनिदेव का वहाँ आगमन हुआ । वह सूर्य-पुत्र सदैव अपने कार्य में निरत, सतत गतिशील एवं महायोगी माने जाते हैं ।

हे मुने ! उस समय कैलास पर आते हुए ग्रहेश्वर शनि अत्यन्त विनम्र सात्त्विक मूर्ति एवं नत मस्तक थे । उनके नेत्र प्रभु के ध्यान में मुँदे हुए थे । मन में भगवान् सर्वेश्वर श्रीहरि का नाम जप चल रहा था । लगता था कि कोई तपस्वी महामुनि चले आ रहे हैं, जिनके शरीर का वर्ण काला होते हुए भी मुखमण्डल अग्नि के समान तेजस्वी प्रतीत होता था । शरीर पर सुन्दर रेशमी पीताम्बर धारण किये हुए थे तथा उनकी चाल सीधी और मन्द थी ।

धीरे-धीरे शनिदेव भगवान् शङ्कर के समक्ष पहुँचे और सभी उपस्थित देवताओं, प्रमुख मुनियों, सिद्धों, लोकपालों आदि के साथ उन्हें प्रणाम किया तथा आज्ञा पाकर एक ओर बैठ गये । परन्तु वहाँ के नृत्य-गानादि में उनका मन नहीं लगा । सोचा, यहाँ बैठकर मुझे क्या करना है ? आनन्द-उत्सव में भाग लेकर आनन्दित होना मेरा कार्य नहीं । जिस कार्य से आया हूँ, वही किसी प्रकार से पूर्ण होना चाहिए ।

शनिदेव ने उठकर भगवान् आशुतोष का स्तवन किया और बोले—‘प्रभो ! मैं भगवान् गणेश्वर के दर्शन चाहता हूँ । इसके लिए मुझे आज्ञा दी जाए ।’

शनिदेव की इच्छा देखकर प्रमुख मुनियों और विष्णु आदि देवताओं ने भी भगवान् शङ्कर से अनुरोध किया कि 'शनिदेव को गणेशजी के दर्शन की सुविधा अवश्य प्रदान की जाए।'

पार्वतीनाथ मुस्कराये, बोले—'गणेश्वर के दर्शन करने हैं तो गिरिराजनन्दिनी के पास जाओ वत्स ! वह वहीं, उन्हीं के पास खेल रहा होगा।'

शनि ने पूछा—'माता पार्वती जी इस समय कहाँ होंगी चन्द्रशेखर ! मुझे वहाँ भेजने की व्यवस्था कीजिए प्रभो !'

भगवान् शङ्कर ने नन्दी को संकेत किया तो नन्दी ने शनिदेव को अपने पास बुलाकर धीरे से कहा—'शनैश्चर ! समाज की शान्ति भंग मत करो। चुपचाप मन्द गति से पार्वतीजी के भवन पर जा पहुँचो। वहाँ द्वार पर कोई होगा, वह तुम्हें भीतर पहुँचा देगा। परन्तु देखो, वक्रगति से न जाना वहाँ।' शनैश्चर मन-ही-मन हँसे। सोचा—यहाँ परमधाम में भी मेरा वक्रगति का ऐसा भय समाया हुआ है ? फिर प्रकट में नन्दीश्वर से बोले—'नहीं प्रभो ! यहाँ ऐसी धृष्टता कैसे कर सकता हूँ ? कृपया मुझे यह स्थान तो बताइये जहाँ जगज्जननी का भवन विद्यमान है।'

नन्दीश्वर हँसे, फिर बोले—'शनिदेव ! तुम्हारी दृष्टि से कोई स्थान बचा हो, यह मैं नहीं समझता। घूम-फिरकर तुम सभी स्थानों का निरीक्षण-परीक्षण कर लेते हो, तब जगज्जननी पार्वती जी का भवन तुम्हारी दृष्टि की पहुँच से कैसे बचा रहा ?'

शनिदेव ने भी हँसकर उत्तर दिया—'यहाँ सभी की दृष्टि कुण्ठित हो जाती है नन्दीश्वर ! मायामय एवं मायातीत भगवान् शङ्कर की उस महामाया का पार कौन पा सकता है ? अब आप कृपा करके मुझे वह स्थान बता दें तो मैं वहाँ पहुँचूँ।'

नन्दीश्वर ने कहा—‘अरे, वह सामने ही तो माता गिरिजा का भवन दिखाई दे रहा है। देखो, वहाँ वे विशालाक्ष भगवान् द्वारपाल बने हुए द्वार पर खड़े हैं।’

## विशालाक्ष का शनिश्वर को रोकना

शनिश्वर ने वहाँ से उठने का उपक्रम किया और भवन की ओर चले। वास्तव में वहाँ एक अत्यन्त सुन्दर एवं भव्य भवन अवस्थित था। उसके चारों ओर असंख्य प्रमथगण विद्यमान थे। भवन के मुख्य द्वार पर अन्य गणों के अतिरिक्त एक विशाल नेत्र वाला सुन्दर पुरुष हाथ में त्रिशूल लिये हुए खड़ा था। शनिदेव धीरे-धीरे उधर ही चल पड़े। किन्तु भवनादि को न देख सके।

शनिदेव को आते देखकर विशालाक्ष तन कर खड़े हो गये। शनि ने देखा कि शिवजी के ही समान रूप, शील, बल वाला, विशालाक्ष त्रिशूल ताने खड़ा है तो दूर से ही बोले—

“शिवाज्ञया शिशुं द्रष्टुं यामि शङ्करकिङ्कर ! ।

विष्णुप्रमुखदेवानां मुनीनामनुरोधतः ॥”

‘हे शिवजी के सेवक ! विशालाक्ष ! मैं देवताओं में प्रमुख भगवान् विष्णु तथा मुनिगणों के अनुरोध से प्राप्त शिवाज्ञा के अनुसार ही शिशु के दर्शनार्थ यहाँ उपस्थित हुआ हूँ।’

विशालाक्ष ने शनैश्चर के निवेदन पर ध्यान नहीं दिया। यह देखकर उन्होंने पुनः कहा—‘हे बुद्धिमान ! हे वीर ! आप कृपया मुझे जगज्जननी पार्वती जी के पास न जाने दें। मैं केवल बालक के दर्शन करके ही वापस लौट जाऊँगा।’

शनि की विनम्र प्रार्थना सुनकर भी उन्हें भीतर नहीं जाने दिया। वे बोले—‘मैं न तो देवताओं की आज्ञा का वहन करने वाला हूँ और न

शिवजी का ही सेवक हूँ। जो देवताओं का दास, विष्णु का पार्षद या शिव का किङ्कर हो, उससे कहो।'

शनिदेव बड़े असमझस में पड़े। उन्होंने सोचा—‘अब क्या किया जाए? कोई सामान्य पुरुष होता तो मैं उसे दृष्टिमात्र से तुरन्त पीड़ित कर एक ओर डाल देता। परन्तु, यह तो अद्वितीय पुरुष जान पड़ता है, जो शिवजी और बैकुण्ठनाथ विष्णु को भी कुछ नहीं समझता। इसलिए इसके प्रति अधिक विनम्रता का व्यवहार करना होगा।’

१७ ऐसा निश्चय कर शनैश्चर ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और बोले—‘प्रभो! मैं आपके पद, पराक्रम और अधिकार से अनभिज्ञ था। इसी से ऐसा कह बैठा। अब आप मेरे अपराध को क्षमा कर दें अन्यथा मेरा यहाँ तक आने का परिश्रम तो विफल होगा ही, आशा पर भी तुषारपात हो जाएगा। अतएव कृपा कीजिए प्रभो! प्रसन्न हो जाइए नाथ!

विशालाक्ष प्रसन्न हो गये। उन्होंने पूछा—‘तुम कौन हो? बालक के दर्शन की इतनी उत्कण्ठा क्यों है तुम्हारे मन में? इन प्रश्नों का उत्तर मिलने पर ही कुछ प्रयास किया जा सकता है।’

शनैश्चर ने कुछ विचार कर कहा—‘नाथ! मैं सूर्य-पुत्र शनि हूँ। अपनी कल्याण-कामना से भगवान् शङ्कर के दर्शनार्थ आया था, साथ ही जगज्जननी और बालक के दर्शन की भी परम अभिलाषा थी। भगवान् के दर्शन तो हो गये, माता और बालक के दर्शन शेष हैं, जो आपकी कृपा से ही हो सकते हैं।’

विशालाक्ष बोले—‘ग्रहेश्वर! माता की आज्ञा के बिना तुम्हें भीतर जाने देना मेरे लिए सम्भव नहीं है।’

‘तो प्रभो!’ शनिदेव ने गिड़गिड़ते हुए निवेदन किया—‘मैं यहाँ खड़ा हूँ, आप जगज्जननी गिरिराजनन्दिनी के पास जाकर आज्ञा ले आने की कृपा कीजिए।’

विशालाक्ष ने कुछ दृढ़ता से कहा—‘तुम्हारा अनुरोध मानकर मैं भीतर जाता हूँ, पर कहीं तुम भी मेरे पीछे-पीछे न चले आना। जब तक मैं न लौटूँ तब तक यहीं खड़े मिलना।’

उन्होंने विश्वास दिलाया—‘निश्चिन्त रहें प्रभो ! मैं यहीं खड़ा हुआ आपकी प्रतीक्षा करूँगा। भला आप जैसे उपकारी देव की आज्ञा का उल्लंघन कैसे कर सकता हूँ ?’

विशालाक्ष उन्हें द्वार पर खड़ा करके भीतर चले गये और जगज्जननी को प्रणाम कर बोले—‘माता ! आपके और शिशु के दर्शन की इच्छा से ग्रहेश्वर शनि सेवा में उपस्थित होना चाहते हैं।’

## पार्वती की आज्ञा से शनि का अनाःपुर में प्रवेश वर्णन

पार्वती जी ने कहा—‘उसे आने दो वत्स ! वह भी सदैव आज्ञा में चलने वाला श्रेष्ठ अनुचर है।’

विशालाक्ष ने द्वार पर लौटकर कहा—‘ग्रहेश्वर ! तुम माता की सेवा में उपस्थित हो सकते हो।’

यह कहकर उन्होंने मुख्य द्वार को कुछ खोल दिया। आज्ञा मिलने से हर्षित हुए शनिदेव भीतर पहुँचे और जगज्जननी उमा को देखते ही उन्हें प्रणाम कर स्तुति करने लगे।

माता एक अत्युच्च रत्नमणि जटित स्वर्ण सिंहासन पर विराजमान हैं। उनके चारों ओर असंख्य देवियाँ खड़ी थीं। पाँच प्रमुख सखियाँ श्वेत चामरों द्वारा निरन्तर उनकी सेवा कर रही थीं। कुछ अन्य सखियाँ ताम्बूल भेंट कर रही थीं तो कुछ सुगन्धित द्रव्य अर्पण कर रही थीं।

माता ने अपनी देह पर अग्नि के समान तेजस्वी वस्त्र धारण किए हुए थे। गले में स्वर्ण-रत्नादि के दिव्य हार, हाथों में कङ्कणादि आभूषण,